ॐ

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यब्रह्मानंद-
स्वामिना विरचितः।
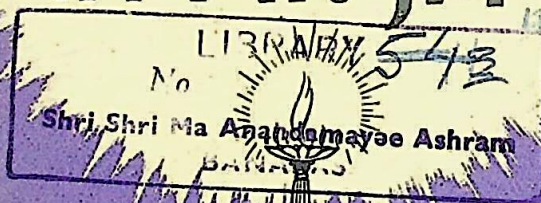
श्री विचार दीपकः

श्री ब्रह्मानंद आश्रम

Dattatreyananda Brahmachari
c/o Sri Ma Anandamayi Ashram,
Bhadaini
Banaras (U.P.)
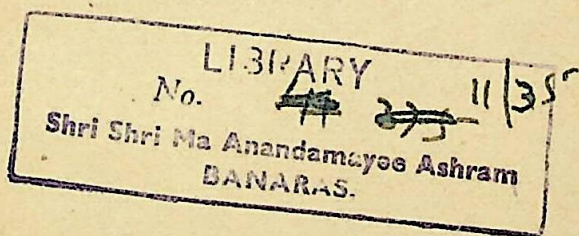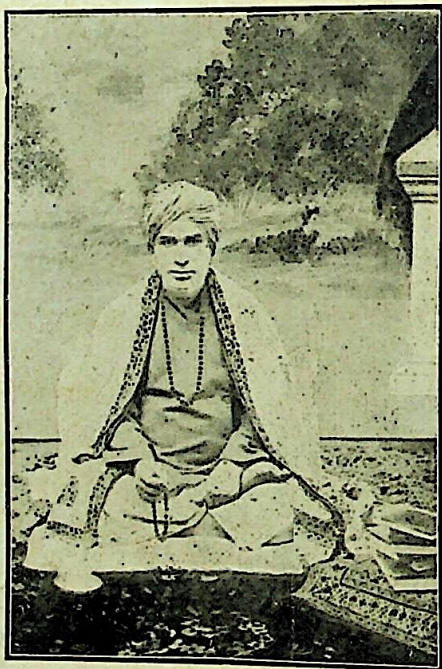
स्वामीब्रह्मानंदजी.

श्रीरमापतये नमः ॥

श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानंदविरचितः

श्रीविचारदीपकः ।

(सप्तमावृत्तिः)

सोऽयं

पं. हरिप्रसाद—शास्त्रिणा मुद्रापयित्वा—

मुम्बय्यां

श्रीमती लक्ष्मीबाई नारायण चौधरी इत्येताभिः स्वीये
निर्णयसागराख्यमुद्रणयन्त्रालये संमुद्र्य प्रकाशितः ।

संवत् २०१० शाके १८७६ सन १९५४

मूल्यं २ रूप्यकद्वयम् ।

(श्लोकः)

पवनभोजनभोजनवाहनं
हलधरासनभूषणमासनम् ।
जलदजन्मसमाश्रयजेक्षणं
गिरिसुताधवमाधवमाभजे ॥

प्रस्तावना.

ॐ सर्व महाशय सज्जनोंको विदित होकि इदानीं कालमें इस भारतवर्षवासी आस्तिक लोकोंमें वेदांतमतका विशेष-करके प्रचार होरहा है और विचारदृष्टिसें देखें तो अन्य सर्व मतोसे यह वेदांतमतहि वेदप्रमाणयुक्त सर्वोत्तम निश्चित होवे है काहेतें अन्य जो योग मीमांसा जैन बौद्धादिक मत हैं सो सर्वहि नानाप्रकारकी क्रियाजाल करके संकुल हैं तिस क्रियाजालमें फसाहुया पुरुष कदाचित्‌भी निष्क्रिय होकरके अखंड अकृत्रिम परमानंदका अनुभव नहीं करसके है और वेदांतमार्गसें तो कर्ता भोक्तापनेका अभिमान दूर करके अपणें निष्क्रिय शांत आत्मस्वरूपमें पुरुषकी स्थिति होवे है इस कारणसें प्रत्यक्षहि इसकी सर्वोत्तमता प्रतीत होवे है सो यद्यपि तिस वेदांतमतके प्रतिपादक उपनिषत् ब्रह्मसूत्र भगवद्गीता इत्यादिक अनेक संस्कृतग्रंथ जगत्‌में प्रसिद्ध हैं परंतु अल्पबुद्धिवाले जिज्ञासु जनोंको तिनका यथार्थ अभिप्राय जानना कठिन है काहेतें तिनके मूल और भाष्यादिकोंमें अन्यमतोंके खंडनमंडनके वास्ते आचार्यलोकोंने अनेकप्रकारकी सूक्ष्मयुक्तयां कथन करी हैं तथा हिंदीभाषामें जो विचारसागर वृत्तिप्रभा-

करादिक ग्रंथ हैं तिनमैंभी विशेषकरके खंडनमंडन लिखा हुया है यातें सोभी चिरकाल प्रयासके विना अल्पमति पुरुषोंकी बुद्धिमें ठीक ठीक आरोहण होने कठिन हैं यातें अतिसुगम अल्पविस्तारवान् और विवादसें रहित उपयोगिमात्र तथा सर्व वेदांतसिद्धांतका सारभूत जो यह विचारदीपक नाम ग्रंथ है सो जिस पुरुषको अपनें हृदयरूप मंदिरसें अज्ञानरूप अंधकार दूर करनेकी वाञ्छा हो उसको अवश्य यह विचारदीपक अपने हाथमें लेकरके नेत्ररूप झरोखेद्वारा अपणे हृदयरूप मंदिरमें स्थापन करना योग्य है.

सो यह ग्रंथ ईश्वरदर्शन योगरसायन धर्मानुशासन भजनमाला योगकल्पद्रुमादिक ग्रंथके बनानेहारे स्वामि-ब्रह्मानंद परमहंस पुष्करवासीने निर्माण किया है सो निर्णयसागर प्रेसके अधिपतिने अपनी तरफसें छापकरके प्रसिद्ध किया है इत्यलं सुज्ञेषु इति

निवेदयति

स्वामी ब्रह्मानंदः.

ॐ

श्रीरमापतये नमः ।

श्रीविचारदीपकः ।

॥ मंगलम् ॥

फणीन्द्रभोगामलतल्पशायिने
दुरंतदुर्ज्ञेयविचित्रमायिने ।
समस्तसत्त्वैकहृदब्जयायिने
नमोऽस्तु मेशाय विमोक्षदायिने ॥ १ ॥

नत्वा पादांबुजं विष्णोरल्पधीबोधसिद्धये ।
भावार्थभासिनीं कुर्वे भाषाटीकां यथामति ॥

टीका—श्रीगणपतये नमः ॥ प्रारब्ध ग्रंथकी निर्विघ्न परिसमाप्तिके अर्थ शास्त्रकी आज्ञासें और परंपरा वृद्धव्यवहारसें कर्तव्यताकूं प्राप्त भया जो मंगलाचरण तिसकूं प्रथम अपने हृदयमें अनुष्ठान करके पुनः अन्य लोकोंकी प्रवृत्तिके अर्थ ग्रंथकार ग्रंथके आदिमें एक श्लोक करके कथन करे हैं ॥ सो मंगल

"वस्तुनिर्देशरूप, आशीर्वादरूप और नमस्काररूप" इस भेदसे तीन प्रकारका होवे है ॥ तिनमेंसे अपने इष्टदेव अथवा परमात्माके केवल स्वरूपमात्रका जो कथन है तिसकूं वस्तुनिर्देशमंगल कहते हैं, और जो इष्टदेव अथवा परमात्माके स्मरणपूर्वक शिष्योंके कल्याणार्थ आशीर्वादका कथन है सो आशीर्वादरूप मंगल कहिये है ॥ तथा इष्टदेव अथवा परमात्माके प्रति जो नमस्कार करना है सो नमस्काररूप मंगल कहिये है ॥ सो तिनमेंसें तृतीय जो नमस्काररूप मंगल है सोई इस स्थलमें करे हैं ॥ फणीन्द्रभोगेति ॥ (फणीन्द्रभोगामलतल्पशायिने) कहिये फणीन्द्र जो शेष नाग तिसका भोग कहिये शरीररूप जो निर्मल श्वेतशय्या है तिसके ऊपर सर्वदा क्षीरसागरमें जो शयन करते हैं ॥ और (दुरंतदुर्ज्ञेयविचित्रमायिने) कहिये जिसका अंत लेना अत्यंत दुष्कर है और जिसका यथार्थ जाननाभी अत्यंत कठिन है तथा जिसकी नानाप्रकारकी विचित्र शक्तियां हैं ऐसी जो अनिर्वचनीय अघटनघटनापटीयसी अर्थात् जो वार्ता किसी प्रकारसेंभी नही घट सके तिसके घटाय देनेमें कुशल माया शक्ति है, तिसकेभी जो अधिष्ठाता

पति हैं ॥ तथा गीताके सप्तमाध्यायमें श्रीकृष्णभग-वान्‌जीनें अपने मुखसेंही कहा है "दैवी ह्येषा गुण-मयी मम माया दुरत्यया" अर्थ—हे अर्जुन, यह जो त्रिगुणमयी मेरी दैवी शक्तिरूप माया है सो दुर-त्यया कहिये तिसका तरना अत्यंत कठिन है इति ॥ मूलश्लोकके प्रथम पादविषे जो कथन किया कि जो सर्वदाहि क्षीरसागरमें शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं सो इस कथनसें एकदेशी होनेतें भगवान्‌की परिच्छिन्नता सिद्ध होवे है यातें अब तिस शंकाके निराकरणके अर्थ तीसरा पाद कहे हैं (समस्तसत्त्वैक-हृदब्जयायिने) कहिये यावत्मात्र जगत्में चराचर-भूत प्राणी हैं तिन सर्वके हृदयरूप कमलविषे गमन करनेहारे अर्थात् तिनके अंतःकरणमें अंतर्यामिरूपसें स्थित होनेहारे ॥ यह वार्ताभी गीताके दशमाध्यायमें कथन करी है "अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः" अर्थ—हे गुडाकेश कहिये अर्जुन, मैं सर्व भूतप्राणि-योंके अंतःकरणमें साक्षी आत्मारूपसें स्थित होय रहाहुं इति ॥ तथा (विमोक्षदायिने) कहिये जो अपने श्रद्धापूर्वक स्मरण करनेहारे भक्तजनोंके प्रति मोक्षपदके देनेहारे हैं, यह वार्ताभी गीताके बारहवें

अध्यायमें कथन करी है "तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु-संसारसागरात् । भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशित-चेतसाम्" अर्थ—हे पार्थ कहिये अर्जुन, जो मेरेविषे चित्तकूं एकाग्र लगाय करके मेरा स्मरण करते हैं तिन पुरुषोंका मैं शीघ्रहि जन्ममरणरूप संसारसमुद्रसें उद्धार कर लेताहुं इति ॥ सो इन पूर्वोक्त सर्व विशेषणों-करके संयुक्त जो मेश कहिये मा जो लक्ष्मी तिसके पति विष्णु भगवान् हैं तिनके प्रति 'नमोऽस्तु' कहिये ग्रंथकी निर्विघ्न परिसमाप्तिके अर्थ मेरा वारंवार नम्रता-पूर्वक नमस्कार होवे इति ॥ तथा इस मंगलाचरणके श्लोकद्वाराहि इस ग्रंथके जो विषयप्रयोजनादि चार अनुबंध हैं सोभी ग्रंथकारने सूचन किये हैं ॥ जैसे कि मूलश्लोकमें जो प्रथमके दोनों पादोंसें ईश्वरके लक्षण कथन करके पुनः तीसरे पादविषे तिसहि ईश्वरकी सर्व भूतप्राणियोंके हृदयकमलमें स्थिति कथन करी है तिसकरके "तत्त्वमसि" आदि महावाक्योंकरके प्रति-पादित जो ईश्वर और जीवकी एकता है सोई इस ग्रंथका विषय सूचन किया है ॥ तथा पश्चात् चतुर्थ-पादविषे जो (विमोक्षदायिने) यह पद है तिसकरके सर्व दुःखोंकी अत्यंत निवृत्ति और निरतिशय परमा-

नंदकी प्राप्तिरूप जो कैवल्यमोक्ष है सोई इस ग्रंथका प्रयोजन सूचन किया है, तथा तहांहि चतुर्थपादमें जो (नमोस्तु मेशाय) अर्थात् लक्ष्मीके पति भगवान्केप्रति नमस्कार होवो यह पद कथन किया है तिसकरके आर्जवता करके उपलक्षित जो विवेकवैराग्यादि साधनोंकरके संपन्न, मोक्षकी उत्कट इच्छावाला जिज्ञासु पुरुष है ॥ सोई इस ग्रंथका अधिकारी सूचन किया है ॥ तथा जीवब्रह्मकी एकताका और ग्रंथका परस्पर प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव संबंध है ॥ अर्थात् ग्रंथ प्रतिपादक है और एकता प्रतिपाद्य है ॥ तथा सर्व दुःखोंकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिरूप जो मोक्ष है, तिसका और अधिकारी पुरुषका परस्पर प्राप्यप्रापकभावसंबंध है, अर्थात् मोक्ष प्राप्य है अधिकारी तिसका प्रापक है ॥ तथा जीवब्रह्मकी एकताके ज्ञानका और ग्रंथका परस्पर जन्यजनकभाव संबंध है अर्थात् ज्ञानजन्य है और ग्रंथ तिसका विचारद्वारा जनक है ॥ इत्यादि अन्यभी परस्पर संबंध जान लेने इति ॥ १ ॥

इस प्रकारसें मंगलाचरण और अधिकारी जनोंकी प्रवृत्तिके अर्थ ग्रंथके चार अनुबंध सूचन करके अब इस ग्रंथके नाम अनुसार विचारकूं दीपकरूपसें वर्णन करे है ॥ सच्छास्त्रतैल इति—

सच्छास्त्रतैलश्च विरागवर्तिक-
श्चेतःसुपात्रश्च गुरूक्तिपावकः ॥
निर्वातहृद्गेहगतः प्रकाशयेत्
सर्वेप्सितं वस्तुविचारदीपकः ॥ २ ॥

टीका—विचाररूप एक दीपक है सो जैसे दीपकमें तैल होवे है तैसेहि विचाररूप दीपकमें सत्शास्त्र जो भगवद्गीता उपनिषदादि हैं सोई तैलस्थानीय हैं; काहेतें, जैसे तैलके विना दीपक प्रज्वलित नहि होवे है तैसेहि सत्शास्त्रके गुरुमुखद्वारा श्रवण अथवा अपने अवलोकन किये विना विचारकी उत्पत्ति नहि होवे है ॥ और जैसे दीपकमें वर्ति होवे है तैसेहि विचाररूप दीपकमें विरागरूप वर्ति है, काहेतें, जैसे वर्तिके विना एकला तैल व्यर्थ होवे है तैसेहि विरागके नहि होनेतें स्त्रीआदिक विषयोंमें निरंतर आसक्ति होनेतें सत्शास्त्रका श्रवणादि व्यर्थ होवे है ॥ और जैसे दीपक किसी मृत्तिकादिके पात्रमें प्रज्वलित होवे है; काहेतें जैसे पात्रके विना तैल और वर्ति व्यर्थ होवे है तैसेहि चित्तकी स्थिति और श्रद्धाविना सत्शास्त्र और विराग व्यर्थ होवे है ॥ और जैसे दीपक अग्निके स्पर्श करनेतें प्रज्वलित होवे है तैसेहि विचाररूप दीपक

तत्त्ववेत्ता गुरुके वाक्यके चित्तसें स्पर्श करनेसें प्रज्व-
लित होवे है, काहेतें जैसे अग्निके विना तैलादिक
प्रकाश करनेमें समर्थ नहि होवे हैं तैसेहि तत्त्ववेत्ता
गुरुके वाक्यविना सत्शास्त्रादिक ज्ञानरूप प्रकाश
करनेमें समर्थ नहि होवे हैं ॥ यह वार्ता सामवेदकी
छांदोग्यउपनिषत्‌मेंभी कथन करीहै "आचार्यवान् पुरुषो
वेद" अर्थ—तिस आत्माकूं गुरुवाला पुरुषहि जाने
है इति ॥ और जैसे दीपक वायुसें रहित स्थानमें स्थित
भया सर्व वांच्छित वस्तुवोंकूं साक्षात् प्रकाश करे है
तैसेहि विचाररूप दीपक चंचलतारूप वायुसें रहित
भये हृदयरूप स्थानमें स्थित भया सर्वजिज्ञासुजनोंको
वांच्छित जो आत्मारूप वस्तु है तिसकूं साक्षात् अर्थात्
संशयविपरीतभावनासें रहित प्रकाश करे है इति ॥ २ ॥
इस प्रकारसें विचारकूं दीपकरूपसे निरूपण करके अब
चार श्लोकोंकरके तिस विचारकी अवश्य कर्तव्यता
वर्णन करे हैं ॥ कलौ हीति—

कलौ हि योगो न जपस्तपो व्रतं
न चापि यागो न सुरार्चनं तथा ॥
प्रयाति सिद्धिं दुरितप्रभावत-
स्ततो विचारैकपरायणो भवेत् ॥ ३ ॥

टीका—'कलौ' कहिये इस कलियुगमें दुरित जो पाप है तिसके प्रभाव अर्थात् बहुलताके होनेतें (योगो) कहिये यमनियमादि अष्टांगरूप जो योग है सो ठीकठीक सिद्धिकूं प्राप्त नहिं होवे है, काहेतें पूर्व सत्युगादिकोंमें पुरुषोंकी आयु बडी होतीथी और योगविद्याके जाननेहारे योगी लोकभी बहुत होतेथे और पुरुषोंके शरीरोंमें सामर्थ्य और नीरोगतादि सर्व व्यवहारभी अनुकूल होताथा यातें तिस कालमें योगकी सिद्धि शीघ्रहि होजा-तीथी ॥ और इस समयमें तो उक्त सर्व वार्तायोंके विपरीत होनेतें यथार्थ पूर्णरीतिसे तिसकी सिद्धि नहि होवे है ॥ तथा (जपः) कहिये गायत्री आदि मंत्रोंका जो जप करना है सोभी यथार्थ सिद्ध नहिं होवे है काहेतें विशेषकरके इस समयमें सर्व मंत्र कीलित और शापयुक्त होय रहे हैं ॥ तथा पार्वतीके प्रति महादेवजीनेंभी कहा है "जिह्वा दग्धा परान्नेन हस्तौ दग्धौ प्रतिग्रहात् । परस्त्रीभिर्मनो दग्धं कथं सिद्धिर्व-रानने" अर्थ—हे वरानने कहिये पार्वति, कलियुगमें ब्राह्मणादिकोंकी जिह्वा तो पराये अन्न भक्षण करके दग्ध होवे है अर्थात् दूषित होवे है और हस्तौ कहिये

दोनों हाथ शुभाशुभ दान लेनेकरके दग्ध होवे हैं तथा परस्त्रियोंके चिंतन करके अभ्यंतरसे मन दग्ध होवे है तो (कथं सिद्धिः) कहिये मंत्रादिकोंकी सिद्धि किस प्रकारसें होसके है इति ॥ तथा (तपो) कहिये पंचाग्नि तपन शीतसहनादिरूप जो तप है तिसकीभी यथार्थ सिद्धि नहि होवे है, काहेतें इस समयमें प्रायः पुरुष इन्द्रियारामी होय रहे हैं और छोटी अवस्थामेंहि विषयासक्त होनेतें शरीरमें बलके अभाव होनेतें दीर्घकालपर्यंत तप करनेमें समर्थ नहि होवे हैं ॥ तथा (व्रतं) कहिये कृच्छ्रचांद्रायणादि जो व्रत हैं तिन-कीभी यथावत् सिद्धि नहि होवे है, काहेतें कलियुगमें प्राण अन्नके आश्रय रहते हैं ॥ यह वार्ता पराशर-संहितामें कथन करी है "कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांससंस्थिताः । द्वापरे रुधिरं यावत् कलावन्नादिषु स्थिताः" अर्थ—सत् युगमें पुरुषोंके प्राण अस्थियोंके आश्रय रहतेथे और त्रेतामें मांसके आश्रय रहतेथे और पुनः द्वापरमें रुधिरके आश्रय रहने लगे और अब कलि-युगमें तो केवल अन्नके आश्रयहि रहते हैं ॥ आदि-शब्द करके दुग्धादिकोंका ग्रहण जान लेना इति ॥ यातें व्रतोंकी सिद्धि नहि होवे है और जो केचित्

श्रद्धालु पुरुष हठ करके करतेभी हैं तो तिनके शरीरमें प्रायः कोई न कोई रोग उत्पन्न होजावे है ॥ तथा (यागो) कहिये अश्वमेध राजसूयादि जो यज्ञ हैं तिनकीभी इस समयमें सिद्धि नहि होवे है, काहेतें तिनके योग्य विपुल द्रव्य और तिनके करानेहारे ऋत्विज और तिस प्रकारकी मंत्रोंमें शक्ति इस कालमें नहि देखनेमें आवे है तथा (सुरार्चनं) कहिये महादेवादि देवतोंका जो पूजन है सोभी सिद्ध नहि होवेहै; काहेतें प्रथम तो तिस प्रकारकी श्रद्धा होनीहि अत्यंत दुर्लभ है और दूसरे प्रायः इस समयकी क्षुद्र प्रजासे देवतोंके प्रसन्न करनेयोग्य परिश्रम होनाभी अत्यंत कठिन है तथा प्रायः कलियुगके विशेष प्रचार होनेसे देवता मर्त्यलोकसे चले जाते हैं और पापकी बहुलता तो सर्व उक्त वार्ताओंकी असिद्धिमें हेतु जान लेनी ॥ और जो केचित् सत्पुरुष निष्पापभी देखनेमें आते हैं तिनकोंभी एक दूसरेके संसर्गसें पापके भागी होनेतें जपादिकोंकी सिद्धि नहि होवे है यह वार्ता महाभारतमें व्यासजीनेभी कथन करी है "असतां दर्शनात् स्पर्शात् संजल्पाच्च सहासनात् । धर्माचाराः प्रहीयंते नैव सिद्ध्यन्ति

मानवाः" अर्थ—पापी पुरुषोंके दर्शन और तिनके साथ स्पर्श तथा संभाषण और तिनके साथ बैठने करके धर्माचारोंकी हानि होनेतें पुरुषोंकूं सिद्धिकी प्राप्ति नहि होवे है इति ॥ यातें विवेकी पुरुषको इस कालमें तो अन्य सर्व उपायोंका परित्याग करके (विचारैकपरायणो भवेत) कहिये केवल एक विचार-केहि तत्पर होना योग्य है इति ॥ ३ ॥ किंच विचारके विना यह पुरुष पशुके समान होवे है यह वार्ता कथन करे है ॥ आहारनिद्रादीति—

आहारनिद्रादि समं शरीरिषु
वैशिष्ट्यमेकं हि नरे विचारणम् ॥
तेनोज्झितः पक्षिपशूपमः स्मृत-
स्तस्माद्विचारैकपरायणो भवेत् ॥ ४ ॥

टीका—आहारनिद्रादि कहिये आहार जो भोजन करना है और निद्रा जो शयन करना है आदिशब्दसें भय मैथुनादिकोंका ग्रहण जान लेना सो यह सर्व धर्म सर्व पक्षी पशु मनुष्यादि देहधारियोंमें समान नहि देखनेमें आते हैं परंतु तिनमेंसे मनुष्यमें केवल सत् असत्का जो विचार करना है सोई (वैशेष्यं) कहिये विशेषता है और जो पुरुष तिस विचार-

करके शून्य है सो तो पक्षी और पशुओंके समानहि होवेहै ॥ यह वार्ता अन्यत्रभी कथन करी है "अहितहितविचारशून्यबुद्धेः श्रुतिसमयैर्बहुभिस्तिरस्कृतस्य । उदरभरणमात्रकेवलेच्छोः पुरुषपशोश्च पशोश्च को विशेषः" अर्थ—जिस पुरुषकी बुद्धि अपने हित और अहित वस्तुके विचार करके शून्य है ॥ और जो वेदमें संध्या तर्पण अग्निहोत्रादि नित्यनैमित्तिक कर्मविधान किये हैं तिन सर्व करकेभी वर्जित है और केवल अपनेहि उदर पूर्ण करनेकी इच्छावाला है तिस पुरुषरूप पशु और दूसरे बैलादिक पशुओंमें क्या भेद है अर्थात् कुछभी भेद नहि है इति ॥ यातेंभी (विचारैकपरायणो भवेत्) कहिये विवेकी पुरुषको अवश्य सर्वकाल विचारकेहि परायण होना योग्य है इति ॥ ४ ॥ किंच विचारके विना वनमें जानेसेंभी पुरुषकूं सुखकी प्राप्ति नहि होवे है यह वार्ता कथन करे हैं ॥ विचारहीनस्येति—

विचारहीनस्य वनेऽपि बंधनं
भवेदवश्यं भरतादिवद्यतः ॥
गृहेऽपि मुक्तो जनकादिवद्भवे-
त्ततो विचारैकपरायणो भवेत् ॥ ५ ॥

टीका—(विचारहीनस्य) कहिये सत् असत्के विचारसे हीन जो पुरुष है तिसको (वनेऽपि) कहिये हिमालयादि पर्वतोंके गहन वनविषे चले जानेसेभी जडभरत शृंगी ऋषि अग्नीध्र आदिकोंकी न्यांई अवश्य बंधनकी प्राप्ति होवे है ॥ और (गृहेऽपि) कहिये विचारवान् पुरुष अपने स्त्रीपुत्रादिकरके संकुल गृहमें स्थित भयाभी राजा जनक प्रतर्दन अजातशत्रु आदिकोंकी न्यांई मुक्तस्वरूप होवे है ॥ यातें इस प्रकार अन्वयव्यतिरेक करकेभी (विचारैकपरायणो भवेत्) कहिये विवेकी पुरुषको केवल विचारकेहि परायण होना योग्य है इति ॥ ५ ॥ किंच विचारके विना आत्मज्ञानकीभी प्राप्ति नहि होवे है यह वार्ता कथन करे है ॥ पठंत्विति—

पठंतु शास्त्राणि यजंतु वाध्वरै-
रटंतु तीर्थानि तपंतु तापकैः ॥
विदंति नात्मानमृते विचारणं
ततो विचारैकपरायणो भवेत् ॥ ६ ॥

टीका—(पठंतु शास्त्राणि) कहिये चाहे यह पुरुष न्याय मीमांसा वेदांतादि अनेक शास्त्रोंका अर्थसहित सम्यक् प्रकारसे अध्ययन करो और (यजंतु

वाध्वरैः) कहिये चाहे अश्वमेध राजसूयादि अनेक यज्ञोंकरके विधिपूर्वक यजन करो ॥ तथा (अटंतु तीर्थानि) कहिये चाहे काशी प्रयागादि अनेक तीर्थोंका प्रयत्नसें अटन करो तथा ॥ (तपंतु तापकैः) कहिये चाहे पंचाग्नि आदि अनेक प्रकारके तापोंकरके दीर्घ कालपर्यंत हठपूर्वक तपका आचरण करो ॥ इत्यादि अन्यभी चाहे अनेक प्रकारके यत्न करो परंतु (विदंति नात्मानमृते विचारणं) कहिये विचार कियेतें विना सो पुरुष आत्मस्वरूपकूं नहि जान सकेहैं; काहेतें नारदमुनिको चतुर्दश विद्यायोंके अध्ययन करनेतेंभी सनत्कुमारके उपदेशजन्यविचारसें विना आत्मपद की प्राप्ति नहि होती भई है यह वार्ता छांदोग्यउपनिषत्में प्रसिद्ध है ॥ तथा सौ अश्वमेध यज्ञोंकूं अनुष्ठान करके इन्द्रपदवीकूं प्राप्त होनेतें भी देवतोंका पति इन्द्रको ब्रह्माके उपदेशजन्य विचारकेविना आत्मपदकी प्राप्ति नहि होती भई है ॥ यह वार्ताभी तहांही प्रसिद्ध है ॥ तथा अनेक तीर्थोंके अटन करनेतेंभी मंकी ऋषिको वसिष्ठमुनिके उपदेशजन्य विचारसेंविना आत्मपदकी प्राप्ति नहि होती भई है यह वार्ता योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणमें प्रसिद्ध है तथा जन्मसेंहि

लेकर वनमें जायकरके अनेक वर्षोंपर्यंत उग्र तप करनेतेंभी शुकदेवजीकूं राजा जनकके उपदेशजन्य विचारसेंविना आत्मपदकी प्राप्ति नहि होती भई है ॥ यह वार्ताभी योगवासिष्ठादिक ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है ॥ यातेंभी विवेकी पुरुषको (विचारैकपरायणो भवेत्) कहिये सर्वदा केवल एक विचारकेहि परायण होना योग्य है इति ॥ ६ ॥ इस प्रकारसें विचारकी अवश्य कर्तव्यका निरूपण करके अब सो विचार किस प्रकारसें करना चाहिये इस प्रकारकी आकांक्षाके होनेतें तिस विचारके स्वरूप प्रतिपादन करनेकी ग्रंथकार प्रतिज्ञा करे हैं ॥ तस्येति—

तस्य स्वरूपं तु समासतः स्फुटं
शास्त्रांतरादत्र विकृष्य यत्नतः ॥
संदर्श्यते शिष्यगुरुप्रसंगतो
युक्त्या कयापीह हि बोध्यते बुधैः ॥७॥

टीका—(तस्य) कहिये तिस प्रस्तुत विचारका जो यथार्थ स्वरूप है तिसकूं (शास्त्रांतरात्) कहिये भगवद्गीता और उपनिषत् तथा शारीरक भाष्यादि अन्य जो वेदांतशास्त्र हैं तिनमेंसें प्रयत्नपूर्वक आकर्षण करके अल्पमतिवाले पुरुषोंको सुखपूर्वक बोधके अर्थ

शिष्य और गुरुके संवादद्वारा (समासतः) कहिये संक्षेपसें स्फुट करके ग्रंथकार इस ग्रंथमें दर्शावे हैं; काहेतें (युक्त्या) कहिये विद्वान् पुरुषोंका यह स्वाभाविक धर्म होवेहै कि कोई न कोईभी युक्ति करके अज्ञानरूप महानिद्रामें सुप्त भये जीवोंकूं बोधन करते हैं इति ॥ ७ ॥ इस प्रकारसें विचारकी प्रतिज्ञा करके अब तिसके विस्तारपूर्वक निरूपण करनेके अर्थ नवीन कथाका उत्थान करे हैं ॥ दृष्ट्वेति—

दृष्ट्वा जराजन्मविपत्तिसंकुलं
सर्वं जगच्चांबुतरंगभंगुरम् ॥
भीतः समागम्य जनोज्झितं स्थलं
कश्चिन्मुमुक्षुः समचिंतयत्त्विदम् ॥ ८ ॥

टीका—(कश्चित्) कहिये कोई एक (मुमुक्षुः) कहिये जन्ममरणरूप संसारबंधनसें मुक्त होनेकी इच्छावान् शमदमादि साधनसंयुक्त पुरुष इस चराचररूप सर्व जगत्कूं जन्म और जरा तथा मरण और विपत्ति जो आध्यात्मिकादि त्रिविध ताप हैं तिनकरके सर्व तरफसें व्याप्त और (अंबुतरंगभंगुरं) कहिये जलके तरंगकी न्यांई क्षणभंगुर विवेकरूप नेत्रोंसें देख करके (भीतः) कहिये अत्यंत भयकूं प्राप्त भया सर्व जनोंसें रहित

एकांतस्थानमें जाय करके आगे कथन करी रीतिसें अपने चित्तमें (अचिंतयत्) कहिये सम्यक् प्रकारसें चिंतन अर्थात् विचार करता भया इति ॥ ८ ॥ इस प्रकारसें कथाकी उत्थानिका बांध करके अब जो तिस मुमुक्षुनें तहां जायकरके विचार किया तिसकूं (अहो विचित्राः) इस श्लोकसें आरंभ करके (इत्थं सुधीः) यहां पर्यंत छब्वीस श्लोकोंकरके वर्णन करे हैं ॥ अहो इति—

अहो विचित्राः खलु मोहशक्तयः
प्रचोदितो याभिरहं निरंतरम् ॥
जनुर्जरादुःखनिपीडितोऽपि नो
कदापि पश्यामि हितं यदात्मनः ॥ ९ ॥

टीका—अहो बडी आश्चर्य और विचित्र (मोह-शक्तयः) कहिये अज्ञानकी शक्तियां हैं कि जिनकरके सर्वदाहि प्रेरित भया मैं अनेक कल्पकल्पांतरोंसें जन्मजरामरणादि नानाप्रकारके दुःखोंकरके (निपी-डितः) कहिये अत्यंत पीडित भया किसी कालमेंभी (हितं यदात्मनः) कहिये अपने आत्माकी हितकारक जो वस्तु है तिसकूं अबपर्यंतभी नहि देखता भया हुं अर्थात् अपने आत्माकूं जन्ममरणरूप संसारबंध-नसें मुक्त करनेके अर्थ कोईभी उपाय नहि करता

भया हुं इति ॥ ९ ॥ जो कोई ऐसे कहे कि पीछे कोई उपाय नहि किया तो अबहि कर लेना चहिये तो तहां कहे है ॥ बाल्यमिति—

बाल्यं मया केलिकलाकलापकै-
र्नीतं च नारीनिरतेन यौवनम् ॥
वृद्धोऽधुना किं नु करोमि साधनं
मुक्तेर्वृथा मे खलु जीवितं गतम् ॥ १० ॥

टीका—(बाल्यं) कहिये सत्शास्त्रके विचारविषे उपयोगी विद्याके अध्ययन करनेका साधन जो बालावस्था थी सो तो मैनें (केलिकलाकलापकैः) कहिये बालकोंके साथ नानाप्रकारकी क्रीडा और कौतुकोंकरके व्यतीत कर दीनी और तीर्थयात्रा तथा तप और महात्मापुरुषोंकी सेवा करनेका साधन-भूत जो यौवनावस्था थी सोभी मैंने (नारीनिरतेन) कहिये सर्वदाहि स्त्रियोंमें आसक्त होनेतें निरंतर तिनहिके चिंतन भोग विलासादिकोंकरके व्यतीत कर दीनी ॥ और अब शक्तिसें हीन परतंत्रताका स्थान और सर्व शरीरकूं शिथिल करनेहारी इस वृद्धावस्थाकूं प्राप्त भया मैं संसारबंधनसें मुक्त होनेके अर्थ क्या साधन करूं ? काहेतें जैसे गृहकूं अग्नि लगे पीछे

कूपका खोदना व्यर्थ होवे है तैसेहि वृद्धावस्थाके प्राप्त हुये पीछे जपतपादिकोंका आरंभ करना व्यर्थ होवे है अर्थात् सम्यक् प्रकारसें नहि होय सकेहै ॥ यातें (खलु) कहिये निश्चयकरके मेरा सर्वहि आयु (वृथा गतं) कहिये वृथाहि चला गया इति ॥ १० ॥ इस प्रकारसें पश्चात्तापकरके अब पुनः कहेहै ॥ निद्रेति—

निद्राव्यवायाशनतत्परोऽभवं
नित्यं विवेकापगतो यथा पशुः ॥
नात्मानमंतःस्थमपि व्यलोकयं
सर्वं वृथा मे खलु जीवितं गतम् ॥ ११ ॥

टीका—(निद्राव्यवायाशनतत्परोऽभवं) कहिये जन्मसें लेकरके अबपर्यंत मैं सत् असत्के विचारसें शून्य भया सर्वदाहि शयन करना स्त्रीसंगम करना भोजन करना इनकेहि तत्पर होता भया हुं (यथा पशुः) कहिये जैसे अन्य गर्दभादि पशु विवेकशून्य तिनके तत्पर हो रहेहैं और (अंतःस्थं) कहिये अपने शरीरमें हि हृदयकमलविषे सर्वदा स्थित भया जो आत्मा है तिसकूं किसी कालमेंभी ज्ञानरूप नेत्रोंकरके (न व्यलोकयं) कहिये मैं नहि देखता भया हुं कि जिसके देखनेसें जन्ममरणरूप संसारबंधनसें मुक्त भया मैं

परमपदकूं प्राप्त हो जाता यातें (खलु) कहिये निश्चय-करके मेरा सर्व आयु (वृथा गतं) कहिये निरर्थकहि व्यतीत हो गया इति ॥ ११ ॥ जो कोई ऐसे कहे कि जो आत्माकूं नहि देखा तो कबी सत्संगहि किया होगा यातें तिसके प्रभावकरकेहि तेरा कल्याण हो जावेगा तो तहां कहेहै ॥ भवापह इति—

भवापहो नैव सतां समागमः
कृतः श्रुता नापि कथाघहारिणी ॥
हरेर्न तीर्थानि गतानि वै मया
वृथाखिलं मे खलु जीवितं गतम् ॥ १२ ॥

टीका—(भवापहो) कहिये जन्ममरणरूप संसारके नाश करनेहारा जो (सतां समागमः) कहिये तत्त्ववेत्ता महात्मा पुरुषोंका संग है सोभी मैनें किसी कालमेंभी नहि किया है ॥ जो कोई कहे कि सत्संग नहि किया तो कबी कहीं नारायणका यशहि श्रवण किया होगा तो तहां कहेहै (श्रुता कथा नाघहारिणी) कहिये सर्व पापोंके दूर करनेहारी जो (हरेः) कहिये नारायणके यशकी पवित्र कथा है सोभी मैने कबी श्रद्धापूर्वक बैठकरके नहि श्रवण करी है ॥ जो कोई कहे कि कथा नहि श्रवण करी तो कबी प्रयागादि तीर्थोंकी

यात्राहि करी होगी तो तहां कहेहै (न तीर्थानि गतानि) कहिये अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा मोक्षपदके देनेहारे जो प्रयाग काशीआदि पवित्र प्रसिद्ध तीर्थ हैं तिनके समीपभी मैनें कबी गमन नहि किया है ॥ यातें सर्व पुरुषार्थोंकरके शून्य होनेतें मेरा सर्व आयु (वृथा गतं) कहिये वृथाहि व्यतीत हो गया इति ॥ १२ ॥ पुनः जो कोई कहे कि उक्त सत्संगादिक नहि किये तो कबी एकांत बैठकरके हरिका आराधनहि किय होगा यातें तिसकरकेहि तेरा कल्याण हो जावेगा तो तहां कहेहै ॥ चतुर्भुज इति—

चतुर्भुजश्चक्रगदायुधः प्रभु-
र्निरंजनः सर्वभवार्तिभंजनः ॥
स्मृतः कदापीह मया न माधवो
वृथाखिलं मे खलु जीवितं गतम् ॥ १३ ॥

टीका—(चतुर्भुजः) कहिये केयूरकटकादि भूषणों-करके शोभायमान और जानुपर्यंत लंबी चतुर्भुजा करके युक्त और (चक्रगदायुधः) कहिये चक्र और गदा आदिक आयुधोंके धारण करनेहारे और (प्रभुः) कहिये सर्व चराचर जगत्के नियंता और अविद्यारूप अंजनसें रहित तथा (भवार्तिभंजनः) कहिये जन्ममरण-

रूप संसारजन्य सर्व क्लेशोंके नाश करनेहारे इस प्रकारके जो माधव कहिये लक्ष्मीके पति भगवान् विष्णु परमात्मा हैं तिनका स्वप्नमेंभी मैनें कबी स्मरण नहि किया है कि जिससें मेरा कल्याण हो जाता यातें (वृथाखिलं) कहिये मेरा सर्व आयु वृथाहि व्यतीत हो जाता भया है इति ॥ १३ ॥ इस प्रकारसें पश्चात्ताप करके अब अपने बंधुजनोंकूं उद्दिश्य करके पांच श्लोकोंसें विचार करेहै ॥ इहांगनेति—

इहांगनातातसुतादिबांधवैः
समागमोऽयं मम किंनिबंधनः ॥
सदाऽचलो वांबुतरंगचंचलो
हितावहो मे किमुताहितावहः ॥ १४ ॥

टीका—(इह) कहिये इस संसारमें अंगना जो स्त्री है और तात जो पिता है तथा सुत जो पुत्र हैं इत्यादि अन्य भी जो माता भ्राता भगिनी आदि बांधवलोक हैं सो इनके साथ यह मेरा समागम कहिये संयोग किस निमित्तसें होय रहाहै । और क्या यह समागम सर्वदा अचल रहेगा किंवा किसी कालमें (अंबुतरंगचंचलः) कहिये जलकी लहरीके समान क्षणभरमें नाश हो जावेगा ॥ तथा क्या

यह समागम मेरा हितकारक है किंवा (अहितावहः) कहिये अहित अर्थात् हानीके करनेहारा है ॥ १४ ॥

किंच ॥ इमे चेति—

इमे च दारात्मजसेवकादयः
समाश्रिता मामथ कर्म वा निजम् ॥
गतिस्तथैषां ननु का भविष्यति
मयि प्रयाते परलोकमंततः ॥ १५ ॥

टीका—(इमे) कहिये यह जो मेरी दारा कहिये स्त्री है और आत्मज कहिये छोटे छोटे पुत्र हैं तथा यह जो मेरे आज्ञाकारी भृत्य हैं इत्यादि अन्य भी जो मेरे अधीन जीव हैं सो सर्वहि क्या मेरेहि आश्रय होयकरके पलते हैं किंवा (अथ कर्म वा निजं) कहिये आपो अपने प्रारब्धकर्मके आश्रयसें पल रहे हैं ॥ किंच जिस कालमें मैं (अंततः) कहिये इस शरीरके अंतकालके हुये अपनी देहके सहित इन सर्वका परित्याग करके परलोककूं चला जाऊंगा तो मेरे पीछेसें इन सर्व दीनोंकी गति कहिये क्या दशा होवेगी अर्थात् जैसे मेरे पोषण करनेहारे पिता माता-दिकोंके मरणेसेंभी पीछेसें मैं अपने प्रारब्धकर्मकरके आनंदपूर्वक पलता और जीवता रहा हुं तैसेहि यहभी

मेरे संन्यास लेने अथवा मरनेसें पीछे पलते और जीवते रहेंगे ॥ तथा अध्यात्मरामायणमेंभी कहा है "सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा । अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥" अर्थ—इस पुरुषके प्रति कोईभी दूसरा सुख वा दुःखके देनेहारा नहि है जो कोई ऐसे मानता है कि अमुकनें मेरेकूं सुख वा दुःख दिया है सो पुरुष बुद्धिसें हीन है तथा जो पुरुष कहता है कि यह कार्य मैनें किया है सोभी तिसका वृथाहि अभिमान है, काहेतें यह लोक आपो अपने प्रारब्धकर्मरूप सूत्रविशे ग्रथित अर्थात् परोये हुये हैं कोई किसीके आश्रय नहि है इति । यातें अब इन बांधवोंके अर्थ किसी प्रकारकी चिंता करनी व्यर्थहि है इति ॥ १५ ॥ किंच ॥ पापैरिति—

पापैरनेकैस्तु यदर्थमादरा-
द्वित्तं समानीय करोम्यहं व्ययम् ॥
ते बांधवा वै मम दुःखभागिनः
किंवा भविष्यंति गतस्य रौरवम् ॥ १६ ॥

टीका—(यदर्थं) कहिये जिन स्त्री पुत्रादिक बंधु जनोंके वास्ते (पापैरनेकैः) कहिये असत्यभाषण कपट छलादि अनेक पापोंकरके वित्त जो द्रव्य है तिसकूं

जहां तहांसे लायकरके मैं अति आदरपूर्वक तिनके वस्त्र आभूषणादिकोंमें (व्ययं) कहिये सम्यक् प्रकारसें खर्च करताहुं सो जिसकालमें तिन पापोंके फल भोगनेके अर्थ मैं रौरव नरकमें जाऊंगा तो क्या तिस कालमें (मम दुःखभागिनः) कहिये सो यह बांधव लोक मेरे दुःखके भागी होवेंगे किंवा नहि अर्थात् नहि होवेंगे, काहेतें यहां प्रत्यक्षहि जो मेरेकूं अल्पज्वरादिजन्य दुःख होवेहै तो सर्व बंधुजन समीप स्थित भयेभी तिसके वांटने अथवा निवृत्त करनेमें समर्थ नहि होते तो नरकमें तो कैसेहि बांट सकेंगे तथा यह वार्ता अथर्ववेदकी गर्भोपनिषत्मेंभी कथन करी है "यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम्। एकाकी तेन दह्येऽहं गतास्ते फलभोगिनः" अर्थ— माताके उदरविषे जीव कहता है कि हे ईश्वर, अपने बंधुजनोंके अर्थ जो जो शुभाशुभ कर्म पूर्वजन्मोंविषे मैनें किये थे तिनकरके इस कालमें मैं एकलाहि इस माताके नरकतुल्य गर्भमें जठरानलकरके जल रहा हुं और जो फलके भोगनेहारे बंधुजन थे सो सर्वहि चले गये तिनमेंसें इस कालमें मेरा कोईभी सहायक नहि है इति ॥ यातें अब इन बंधुजनोंके अर्थ पापकर्म करनाभी व्यर्थहि है इति ॥ १६ ॥

किंच किसी जीवका किसीके साथभी परस्पर संबंध नहि है यातेंभी नरकमें कोई दुःखका भागी नहि होवे है यह वार्ता कथन करे है ॥ सायमिति—

सायं समेत्यैकतरुं विहंगमाः
प्रातः प्रयांतीह दिशं निजां निजाम् ॥
त्यक्त्वा यथान्योन्यमगं च तं तथा
सर्वे समायांति च यांति बांधवाः ॥ १७ ॥

टीका—(सायं समेत्य) कहिये जिस प्रकार सायंकालमें सर्व दिशोंसें आय आयकरके पक्षी एक वृक्षपर एकत्र होयकर रात्रीपर्यंत निवास करके पुनः प्रातःकालके प्राप्त हुये तिस वृक्षकूं तथा एक दूसरे पक्षीकूं छोडकरके (दिशं निजां निजां) कहिये आपो अपनी अभिमत दिशाकूं चले जाते हैं ॥ तैसेहि माता पिता स्त्री पुत्रादि सर्व बांधवलोक स्वर्गनरकादिरूप दिशोंसें जन्मरूप सायंकालसें लेकर प्रारब्धकर्मरूप रात्रीपर्यंत गृहरूप वृक्षपर एकत्र होयकरके पुनः मृत्युरूप प्रातःकालके भयेतें तिस गृहकूं तथा एक दूसरे बंधुजनोंकूं छोडकरके आपो अपने कर्मके अनुसार स्वर्ग-नरकादिरूप अभिमत दिशाकूं चले जाते हैं तथा यह वार्ता महाभारतमेंभी कथन करीहै "यथा काष्ठं च काष्ठं

च समेयातां महोदधौ ॥ समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूत-समागमः ॥" अर्थ— जैसे समुद्रविषे जलकी लहरि-योंके वेगकरके एक किसी दिशासें और एक किसी दिशासें आयकरके दोनों काष्ठ क्षणमात्र मिल जाते हैं और पुनः दूसरी लहरीके वेगकरके सो परस्पर वियोगकूं प्राप्त हो जाते हैं तैसेहि संसाररूप समुद्रविषे प्रारब्धकर्मरूप लहरियोंके वेगकरके बंधुजन मिल जाते हैं और पुनः जब मृत्युरूप दूसरी लहरीका वेग होवे है तो परस्पर बिछुड जाते हैं इति ॥ यातें इनके मरने आदिमें शोच करनाभी व्यर्थहि है इति ॥ १७ ॥ इस प्रकारसें विचार करके अब वैराग्यकूं प्राप्त भया पुनः कहेहै ॥ यथेति—

यथा कपोतोऽन्नकणाभिवाञ्छया
शिचं विशन्नेति दुरंतबंधनम् ॥
कुटुंबजाले विषयाशयाऽविशं
तथा विमुच्येय कथं जगत्पते ॥ १८ ॥

टीका—(यथा) कहिये जैसे अन्नके कणकोंकी अभिलाषाकरके कपोतादि पक्षी (शिचं) कहिये जालमें प्रवेश करनेतें अतिदृढ बंधनकूं प्राप्त भया पुनः अनेक प्रकारके शरीरच्छेदनादि क्लेशोंकूं प्राप्त होवेहै

तैसेहि मैंभी (विषयाशया) कहिये स्त्रीसंगमादि विषयोंकी आशाकरके इस कुटुंबरूप मोहजालविषे प्रवेश करता भया हुं सो मैं नहि जानता कि मेरी इसमें फसे हुये क्या दशा होवेगी ॥ यातें हे (जगत्पते) कहिये सर्व जगत्के अधिपति अंतर्यामिन् सर्वज्ञ—ईश्वर मैं इस कुटुंबरूप जालसें किस प्रकार (विमुच्येय) कहिये मुक्त होउंगा अर्थात् छूटुंगा काहेतें यह जाल बडा भारी है इसमें छूटना अत्यंत दुष्कर है ॥ तथा यह वार्ता भागवतमेंभी कथन करी है "लोहदारुमयैः पाशैर्दृढबद्धोऽपि मुच्यते ॥ स्त्रीधनादिषु संसक्तो मुच्यते न कदाचन ॥" अर्थ—अज्ञानी पुरुष लोह और काष्ठादि दृढ पाशोंकरके बद्ध हुया किसी कालमें कोई उपायकरके मुक्तभी हो जावेहै परंतु स्त्रीधनपुत्रादिरूप जो पाश हैं तिसमें फसा हुया तो कदाचित्भी मुक्त नहि हो सकेहै इति ॥ १८ ॥ इस प्रकार सामान्यसें सर्व बंधुजनोंमें दोषदृष्टि दिखलायकरके अब पुनः दो श्लोकोंकरके पृथक् स्त्रीमें दोषदृष्टि वर्णन करेहैं ॥ इयमिति—

इयं च मुक्तालिलसत्पयोधरा
कणन्मणिव्रातनितंबमंडला ॥

विभाति रम्या ललनाऽविचारतो
विचारदृष्ट्या तु कुमांसपुत्रिका ॥ १९ ॥

टीका—(मुक्तालिलसत्पयोधरा) कहिये मोतियोंके हार पहरनेसें शोभायमान होय रहे हैं स्तन जिसके और (मणिव्रात) कहिये मणियोंकी तडागी जिसके (नितंबमंडला) कहिये कटिदेशमें सुंदर झनत्कार कर रही है इत्यादि अन्यभी अनेक आभूषण और सुंदर सुंदर वस्त्रोंकरके शोभायमान जो यह (ललना) कहिये मेरी स्त्री है सो केवल विना विचार कियेसें (रम्या) कहिये रमणीय प्रतीत होवेहै और (विचारदृष्ट्या तु) कहिये जो इसके अवयवोंकूं विचारदृष्टिसें भिन्न भिन्न करके देखें तो केवल (कुमांसपुत्रिका) कहिये एक महा अपवित्र मांसकी पुतलीहि दृष्टआती है ॥ तथा यह वार्ता योगवासिष्ठमेंभी कथन करी है "त्वङ्मांसरक्तबाष्पांबु पृथक् कृत्वा विलोचने । समालोकय रम्यं चेत्किं मुधा परिमुह्यसि" अर्थ—हे पुरुष, स्त्रीके शरीरमेंसें त्वचा मांस रुधिर लाला नेत्र इत्यादि अवयवोंकूं तुं पृथक् कहिये भिन्न भिन्नकरके देख जो इनमें क्या रमणीय और पवित्र वस्तु है नहीं तो काहेतें वृथाहि उपरकी सफाई देखकरके मोहकूं प्राप्त होताहै इति अब

इस स्त्रीमेंभी आसक्ति करनी व्यर्थहि है इति ॥ १९ ॥
किं च ॥ एषा त्विति—

एषा तु बद्ध्वालकदामभिर्दृढं
कृष्ट्वा च हावांचितलोलवीक्षणैः ॥
मामंगना नर्तयतीह संततं
नाद्यापि लज्जे कपितुल्यतां गतः ॥ २० ॥

टीका—(एषा) कहिये यह स्त्री मेरेकूं (अलकदामभिः) कहिये अपनी मनोहर अलकरूप रज्जुवोंसें दृढ बांधकरके और (हावांचित) कहिये कटाक्षगर्भित नेत्रोंके चंचल देखनेसें आकर्षण अर्थात् खैंचकरके सर्वदाहि (नर्त्तयति) कहिये नचावती रहती है जैसे बाजीगर बंदरकुं नचावे है अर्थात् यह वस्त्र चाहिये यह आभूषण चाहिये यह वस्तु गृहमें नहि है इत्यादि अनेक प्रकारके कार्योंमें सर्वदा भ्रमावती रहती है ॥ सो मैं इस प्रकारसें (कपितुल्यतां गतः) कहिये बंदरकी तुल्यताकूं प्राप्त भया अब वृद्धावस्थामेंभी लज्जाकूं नहि प्राप्त होता हुं अहो यह क्या आश्चर्यकी वार्ता है ॥ तात्पर्य यह जैसे महावनविषे स्वतंत्र विचरनेहारे बंदरकूं किंचित् लालच दिखलायकरके बाजीगर पकड लेवेहै और पश्चात् सर्व आयुषपर्यंत तिसकूं

नचावे है तथा महादीन कर देवेहै तैसेहि ब्रह्मरूप महावनविषे स्वतंत्र विचरनेहारा जो मैं था सो मेरेकूं संभोगरूप लालच दिखलायकरके इस स्त्रीनें पकड अर्थात् अपने वशीभूत करके सर्व आयुषपर्यंत नृत्य कराया है और मेरेकूं महादीन कर दिया है यातें अब इसके फंदसें छूटनेका अवश्य कोई उपाय करना उचित है इति ॥ २० ॥ इस प्रकारसें स्त्रीविषे दोषदृष्टि दर्शाय-करके अब पुत्रमें दिखलावे है ॥ सूनुरिति —

सूनुर्मयायं परिपूज्य देवता
लब्धः प्रयत्नेन च वर्द्धितोऽधुना ॥
मामेव मूढः परिशिक्षितः स्त्रिया
द्वेष्टीत्यहो भाग्यविपर्ययो हि मे ॥ २१ ॥

टीका—(मया) कहिये मैंने दुर्गाभैरवादि अनेक देवतायोंका चिरकालपर्यंत विधिपूर्वक पूजन करके तिनके प्रसादसें यह (सूनुः) कहिये कथंचित् एक पुत्र पाया है ॥ और (प्रयत्नेन) कहिये अति प्रयत्नसें इसकूं पोषण करके बडा किया है अर्थात् दंतनिकलना शीत-लादि अनेक प्रकारके रोगोंसें औषधपानादि उपायों-करके इसका रक्षण किया है ॥ तथा अतीव कष्टसें संचय किये हुये द्रव्यका व्यय करके इसकूं पढाया

और विवाह किया है ॥ परंतु यह कृतघ्न (परिशिक्षितः स्त्रिया) कहिये अब अपणी स्त्रीकरके शिक्षित भया अर्थात् तेरा पिता मेरेकूं ऐसे कहताथा तेरी माता मुझे ऐसे कहती थी इत्यादि तिसके वचनोंके पीछे लगकरके तिसके वशीभूत भया मूर्ख (मामेव द्वेष्टि) कहिये मेरेसाथहि द्वेषभाव करे है अर्थात् मेरेकूं गृहसे बाहिर करके आपहि स्वामी होना चाहता है ॥ सो अहो कहिये यह बडा आश्चर्य मेरे भाग्यका विपर्यय कहिये उलटापना है काहेतें सर्व लोक अपने सुखकेवास्ते पुत्रकी वांछा करते हैं कि वृद्धावस्थामें हमारेकूं सुख देवेगा और यह तो मेरेकूं उलटा दुःखदायक हो गया सो मानो मैनें अपने हाथसेंहि सर्पकूं दुग्ध पान करायके गृहविषे पाला है ॥ यातें अब इस पुत्रकीभी अपेक्षा करनी व्यर्थहि है ॥ और जो कहीं वेदमें ऐसा लिखा है कि "नापुत्रस्य गतिः" कहिये पुत्रसें रहित पुरुषकी गति कहिये कल्याण नहि होवेहै ॥ सो यह वाक्यभी विषयासक्त गृहस्थ पुरुषके ऊपर है विरक्त मुमुक्षुपुरुषपर नहि; काहेतें वेदमेंहि पुनः दूसरे स्थलविषे लिखा है कि "न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः"

अर्थ—यज्ञादि कर्म करके और पुत्रादिरूप बहुत प्रजा-करके तथा विपुल धनकरके कल्याण नहि होवे है किंतु त्यागकरके हि केचित् ऋषि लोक मोक्षपदकूं प्राप्त होते भये हैं इति ॥ तथा दत्तात्रेय भीष्म जडभरतादिक पुत्रके विनाहि मोक्षपदकूं प्राप्त होते भये हैं और जो केवल पुत्रसें हि कल्याण होता तो सूकरश्वानादिकोंकाभी होय जाता काहेतें तिनके तो मनुष्योंसेंभी अधिक पुत्र होते हैं ॥ यातें कल्याणके अर्थभी पुत्रकी अपेक्षा करनी व्यर्थहि है इति ॥ २१ ॥ इस प्रकारसें पुत्रविषे दोषदृष्टि दिख-लायकरके अब धनविषे दर्शावै है ॥ अनेकयत्नैरिति—

अनेकयत्नैः समुपार्ज्य सर्वतः
सदाप्तिरक्षाक्षतिदुःखदं धनम् ॥
व्ययं कुकार्येषु करोम्यहो पदं
स्वकं स्वकीयेन करेण हन्यते ॥ २२ ॥

टीका—प्रथम तो धनकी प्राप्तिकालमें पराधीनतादि अनेक प्रकारके क्लेश होते हैं और पश्चात् तिसकी रक्षा करनेमें चोरका भय राजाका भय इत्यादि अनेक क्लेश होते हैं पुनः तिसके व्यय अथवा नष्ट हो जानेसें तो अत्यंतहि क्लेशकी प्राप्ति होवेहै ॥ इस प्रकारसें (सदाप्तिरक्षाक्षतिदुःखदं) कहिये सर्वदाहि प्राप्ति और

रक्षण तथा नाश इन तीनों कालोंमेंहि क्लेशके देनेहारा जो धन है तिसकूं मैं अनेक प्रकारके यत्न अर्थात् नोकरी व्यापारादि उपायोंसे (समुपार्ज्य) कहिये संचय करके पश्चात् (कुकार्येषु) कहिये वेश्याका नृत्य कराना परस्त्रीगमन करना इत्यादि कुत्सित कर्मोंमेंहि सर्व व्यय करता भया हुं सो अहो कहिये बडे खेदकी वार्ता है मानो मैंने अपने हाथसेंहि अपने पैरकूं काटनेका उद्यम किया है ॥ यातें अब इस धनकाभी संचय करना व्यर्थहि है इति ॥ २२ ॥ जो धनका संचय नहि करेगा तो तेरा भोजनादि व्यवहार किस प्रकारसें चलेगा इस प्रकारकी शंका होनेतें समाधान कहे है ॥ जल इति—

जले स्थले योऽपि च शैलमस्तके
सदैव पुष्णाति जगच्चराचरम् ॥
स मेऽशनं दास्यति विश्वपालको
न किं किमर्थं तु गतोऽस्मि दीनताम् ॥२३॥

टीका—जो परमात्मा (जले) कहिये समुद्रमें रहनेहारे बडेबडे शरीरवाले मकरमत्स्यादिकोंकूं और (स्थले) कहिये पृथिवीमें रहनेहारे मनुष्य पशु आदि-कोंकूं तथा (शैलमस्तके) कहिये हिमालयादि पर्वतोंके

शिखरोंपर रहनेहारे मृग पक्षी आदिकोंकूं यथायोग्य अन्नादिप्रदानद्वारा सर्वदाहि पोषण करे है तथा वृक्ष वल्ली आदिक अचर जीवोंकूंभी वर्षा आदिकद्वारा पोषण करे है अपि शब्दसें पातालमें रहनेहारे नाग और दैत्यादिकोंकूं तथा अंतरिक्षमें रहनेहारे देवतायोंकूंभी अमृतपानादिद्वारा पोषण करेहै ॥ इसप्रकारसें (विश्वपालकः) कहिये सर्वहि चराचर विश्वके पालन करनेहारा जो अंतर्यामी विश्वंभर भगवान् है सो क्या मेरेकूं (अशनं) कहिये भोजन नहि देवेगा अर्थात् देवेहिगा ॥ तथा पांडवगीतामें शौनक ऋषिनेंभी कहा है "भोजनाच्छादने चिंतां वृथा कुर्वंति वैष्णवाः ॥ योऽसौ विश्वंभरो देवः स भक्तान् किमुपेक्षते" अर्थ—वैष्णवलोक अर्थात् भगवत्के परायण पुरुषोंको भोजन वस्त्रादिकोंकी चिंता करनी व्यर्थ है काहेतें जो भगवान् सर्व चराचर विश्वकूं पोषण करनेहारा है, सो क्या अपने भक्तजनोंकूं भोजनादि नहि देवेगा अर्थात् देवेहिगा इति ॥ तथा इसी वार्तापर एक क्षुधासें आर्त्त भये महात्मा पुरुषनेंभी कहा है "विश्वंभर भर त्वं मां विश्वतो वा बहिष्कुरु । द्वयोरप्यसमर्थश्चेत्त्यज विश्वंभराभिधाम्" अर्थ—हे विश्वंभर, तुं मेरेकूं भर अर्थात् पोषण कर

और जो तुं मेरे पोषण करनेमें समर्थ नहि है तो मेरेकूं अपने विश्वमें बाहिर करदे और जो तुं उक्त दोनों वार्ता नहि कर सकता तो अपना विश्वंभर यह नाम छोड दे इति ॥ यातें भोजनादिके अर्थ काहेको मैं 'गतोस्मि दीनतां' कहिये धनी पुरुषादिकोंकी दीनताकूं प्राप्त होय रहा हुं अर्थात् अब ईश्वरके विना किसीके अधीन नहि होना चहिये इति ॥ २३ ॥ इस प्रकारसें धनविषे विराग दिखलायकरके अब अपने शरीरकूं उद्दिश्य करके तीन श्लोकोंसें शोच करे है ॥ लब्ध्वेति—

> लब्ध्वापि देवेप्सितमानुषं वपु-
> र्नीतं समस्तं गृहकृत्यकल्पनैः ॥
> चिंतामणिं हस्तगतं विहाय वै
> क्रीतं मया काचदलं कुबुद्धिना ॥ २४ ॥

टीका—देवेप्सित कहिये जिस मनुष्यदेहकी देवता भी वांछा करते हैं कि हमारेकूं प्राप्त होवे तो हम पुरुषार्थ करके देवपणेसेंभी श्रेष्ठ जो मोक्षपद है तिसकूं संपादन करें ॥ यह वार्ता विष्णुपुराणमेंभी कथन करी है "गायंति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमि-भागे ॥ स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते भवंति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्" स्वर्गविषे देवतालोकभी इस प्रकारके गीत

गायन करते हैं कि सो पुरुष धन्य हैं जो भोग और मोक्षके साधनभूत भारतखंडमें जन्म लेते हैं किंच सो पुरुष हमारेसेंभी श्रेष्ठ हैं इति ॥ सो इस प्रकारके दुर्लभ मनुष्यशरीरकूं (लब्ध्वापि) कहिये प्राप्त होय करके भी मैनें सर्वहि गृहके कार्योंकी नानाप्रकारकी कल्पनायों-विषे व्यतीत कर दिया सो मानो (कुबुद्धिना) कहिये नष्ट भयी बुद्धिवालेनें मैनें अनायाससें अपने हाथमें प्राप्त भया अमोल चिंतामणिका परित्याग करके तिसके बदलेमें (काचदलं) कहिये व्यर्थ कांचका टुकडा मोल ले लिया ॥ तथा यह वार्ता गरुडपुराणमें विष्णु-भगवान्नें गरुडके प्रतिभी कथन करी है "योनि-शतेषु लभते किल मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खग भो द्विजत्वम् ॥ यस्तत्र पालयति लालयतीन्द्रियाणि तस्या-मृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात्" अर्थ—(भो खग) कहिये हे पक्षिराज, इस पुरुषकूं अनेक योनियोंविषे भ्रमते भ्रमते किसी कालमें पुण्यके प्रभावसें मनुष्यशरी-रकी प्राप्ति होवे है तिसमेंभी पुनः (द्विजत्वं) कहिये त्रैवर्णिक शरीरकी प्राप्ति होनी अत्यंत दुर्लभ है सो जो पुरुष तिसकूंभी प्राप्त होयकरके पुनः अपनी इन्द्रियोंकूं विषयोंकरके पालन और लालन करते हैं सो मानो

तिसके हाथमें प्राप्त भया अमृत क्षरताचला जावे है इति ॥ २४ ॥ इस प्रकारसें शरीरकी दुर्लभताका वर्णन करके अब पुनः तिसहि शरीरकी कृतघ्नता निरूपण करे है ॥ इदमिति—

इदं सदाऽभ्यंगसुतैलवासितं
वरांगनालिंगनलालितं मुहुः ॥
हितान्नपानौषधिवर्धितं वपुः
कृतघ्नमंते न समं मयैष्यति ॥ २५ ॥

टीका—(सदाऽभ्यंगसुतैलवासितं) कहिये सर्वदा हि अभ्यंग और नानाप्रकारके सुगंधियुक्त तैलोंकरके सुगंधित किया हुया और वरांगना जो यौवनावस्थाकी सुंदर स्त्रिया हैं तिनके वारंवार गाढालिंगनकरके (लालितं) कहिये लाडका किया हुया तथा (हित) अर्थात पथ्ययुक्त मिष्टान्न भोजनोंकरके और केवडादि सुगंधयुक्त जलपानकरके तथा पुष्टिकारक औषधियोंकरके (वर्धितं) कहिये वृद्धिकूं प्राप्त किया हुया जो यह मेरा (वपुः) कहिये शरीर है सो यह ऐसा कृतघ्न है कि नित्यप्रति उक्त सर्व उपायोंके करनेतेंभी दिनदिनमें क्षीणताकूंहि प्राप्त होता जावे है और (अंते) कहिये प्राणोंके अंतकालमें परलोकविषेभी मेरेसाथ नहि

जावेगा यह वार्ता प्रसिद्धही है यातें अब इस शरीरमें आसक्ति करनीभी व्यर्थही है इति ॥ २५ ॥ इस प्रकारसें शरीरकी कृतघ्नता वर्णन करके अब शरीरमें आसक्तिका जो हेतु है तिसकूं दिखलावे है ॥ मलीमस इति—

मलीमसेऽनात्मनि नाशशालिनि
शुचित्वमात्मत्वमवैमि नित्यताम् ॥
अनाद्यविद्यातिमिरावृतेक्षणः
किमंजनं तस्य भवेन्निवर्तकम् ॥ २६ ॥

टीका—अनादिकालके अविद्यारूप तिमिरकरके बुद्धिरूप नेत्रोंके आच्छादित होनेतें (मलीमसे) कहिये मलमूत्रादिकोंका स्थानभूत अत्यंत मलीन जो यह मेरा शरीर है तिसविषे मैं पवित्रबुद्धि करताहुं अर्थात् मेरा शरीर गौरवर्णका और अति सुंदर है और उत्तम कुलमें उत्पन्न भया है इस प्रकारसें शुचि मानताहुं तथा (अनात्मनि) कहिये इस अनात्मरूप देहविषे मैं आत्मबुद्धि करताहुं अर्थात् मैं स्थूल हुं मैं अति कृश हुं मैं अमुक जातिवान् हुं इस प्रकारसें मानता हुं तथा (नाशशालिनि) कहिये क्षणक्षणप्रति परिणामी और विनाशवान् इस शरीरमें नित्यबुद्धि करताहुं अर्थात् ऐसे ऐसे कार्योंका आरंभ करता हुं

कि मानो कबीभी मरणा नहि है ॥ किंच तैसेहि स्वर्गादि अनित्य पदार्थोंमें नित्यबुद्धि और अनर्थरूप व्यवहारप्रवृत्तिरूप दुःखमें सुखबुद्धि करता हुं इस प्रकारसें सर्वत्र विपरीतदर्शनमें हेतुभूत जो अनादि अविद्यारूप तिमिर है तिसके निवृत्त करनेहारा (किमंजनं) कहिये ऐसा क्या अंजन है कि जिसके बुद्धिरूप नेत्रोंमें डालनेसें मेरी यथार्थदृष्टि होय जावे इति ॥ २६ ॥ इस प्रकारसें शरीरविषे दोष-दृष्टिवर्णनद्वारा अविद्याका स्वरूप निरूपण करके अब आयुषकूं उद्देशकरके कहे है ॥ क्षणं क्षणमिति—

क्षणं क्षणं दीपशिखोपमां दधत्
सरंध्रकुंभास्रवदंबुसन्निभम् ॥
प्रयात्यशेषं तु ममायुरुत्तमं
न सेक्षणोऽपीह विलोकयाम्यहो ॥ २७ ॥

टीका—(क्षणं क्षणं) कहिये जैसे दीपककी शिखा क्षणक्षणमें चंचल उर्ध्वकूं जावे है और जैसे (सरंध्रकुंभ) कहिये छिद्रयुक्त घटमेंसें क्षणक्षणमें सर्वतरफसें जल स्रवता जावे है तैसेही (ममायुः) कहिये मेरे शरीरकी अमोलिक सर्व आयुष क्षणक्षणमें चली जाती है ॥ सो मैं (सेक्षणोपि) कहिये

बडेबडे नेत्रोंवाला होयकरभी तिसकी तरफ नहि देखता हुं अहो कहिये यह क्या आश्चर्यकी वार्ता है ॥ तथा यह वार्ता योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणमें अपने शिष्यकेप्रति एक मुनिनेंभी कथन करी है "आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलंबांबुवद्भंगुरं भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामनीचंचलाः ॥ लोला यौवनलालनाजलरयः कायः क्षणापायवान् पुत्र त्रासमुपेत्य संसृतिवशान्निर्वाणमन्विष्यताम्" अर्थ—जैसे वायुके वेगकरके एकत्र भये मेघोंके समूहविषे भराहुया जल क्षणभंगुर होवे है तैसेहि यह पुरुषकी आयु क्षणभंगुर है और जैसे आकाशमें छायेहुये मेघोंमें विजुली चंचल होवे है तैसेहि संसारके सर्व भोग चंचल हैं और यौवनावस्थाकी जो लालना अर्थात् विलास हैं सोभी (लोल) कहिये थोडे दिनोंमेंहि चलायमान हो जाते हैं और जैसे महानदीके जलका वेग शीघ्रहि चला जावे है तैसेही यह शरीर क्षणक्षणमें चला जावे है यातें हे पुत्र, तूं इस जन्ममरणरूप संसारसें भयकूं प्राप्त होकरके निर्वाण जो मोक्षपद है तिसकी प्राप्तिके अर्थ यत्न कर इति ॥ २७ ॥ इस प्रकारसें आयुषकी क्षणभंगुरताका वर्णन करके अथ तिसके विपरीत अपने निश्चयकूं दिखलावे है ॥ गता इति—

गता मदीयाः पितरो यमालयं
प्रयांति चान्येऽपि दिनं दिनं प्रति ॥
अहं तु पश्यन्नपि तानहो शठ-
स्तथापि मन्ये स्थितिमात्मनो ध्रुवाम् २८

टीका—(मदीया) कहिये मेरे जो वृद्ध पिता पितामह आदिक थे सो सर्वहि अपने अपने शरीरोंका परित्याग करके (यमालयं) कहिये यमराजाके स्थानकूं चलेगये अर्थात् मृत्युकूं प्राप्त हो गये हैं तथा (प्रयांति चान्येपि) कहिये दिनदिनप्रति ग्रामके निवासी दूसरे लोकभी मरमरकरके चले जाते हैं और मैं तो (शठः) कहिये मूर्ख तिनकूं नित्यप्रति अपने नेत्रोंसें प्रत्यक्ष देखता हुयाभी पुनः इस शरीरसें इस संसाररूप सरायविषे अपनी (ध्रुवां) कहिये निश्चित स्थिति मान रहा हुं अहो कहिये यह क्या बडे आश्चर्यकी वार्ता है ॥ तथा यह वार्ता महाभारतविषे यक्ष और युधिष्ठिरके संवादमेंभी कथन करी है "अहन्यहनि भूतानि गच्छंतीह यमालयम् ॥ शेषाः स्थावरमिच्छंति किमाश्चर्यमतः परम्" अर्थ—यक्षने प्रश्न किया कि हे युधिष्ठिर, इस जगत्में आश्चर्यवार्ता क्या है तब युधिष्ठिरनें कहा हे यक्ष,

(अहन्यहनि) कहिये नित्यप्रति दिनदिनमें भूतप्राणी मरमरकरके यमलोककूं चले जाते हैं और दूसरे पुरुष तिनकूं अपने नेत्रोंसें देखते हुयेभी पुनः इस जगतमें अपनी स्थिरता चाहते हैं सो इससें परे अन्य क्या आश्चर्य होगा अर्थात् यही परमाश्चर्यकी बात है इति ॥ २८ ॥ इस प्रकारसें शरीरविषयक विराग दिखलाय करके अब श्लोकद्वयकरके अपनी इन्द्रियोंकी दुष्टता वर्णन करे है ॥ एत इति—

एते च जिह्वेक्षणनासिकादय-
श्चौरास्तु शश्वन्मम देहवासिनः ॥
लुंपंति सर्वात्मधनं प्रमाथिनो
नाद्याप्यवेक्षे मम पश्यताज्ञताम् ॥ २९ ॥

टीका—(एते) कहिये यह जो जिह्वा नेत्र नासिका आदिशब्दसें श्रोत्र त्वचा हस्त पादादिक इन्द्रिय हैं सो (शश्वत्) कहिये सर्वदाहि मेरे शरीरविषे निवास करनेहारे चोर हैं किंच चोरोंसेंभी अधिक दुष्ट हैं काहेतें चोर जिसके आश्रय रहते हैं तिसकी प्रायः चोरी नहि करते और यह इन्द्रियरूप चोर तो सर्वदा मेरे आश्रय रहकरके मेरीहि चोरी करते हैं सो जिस प्रकार चोर धनका हरण करते हैं तैसेहि यह

इन्द्रियरूप चोर मेरा (सर्वात्मधनं) कहिये सर्वात्म-भावरूप जो धन है तिसकूं हरण करते हैं अर्थात् मेरे सच्चिदानंद परिपूर्ण नित्यशुद्धबुद्ध स्वरूपकूं विस्मरण करायके तुच्छ जीवभावकूं प्राप्त करनेहारे हैं किंच चोर तो किसी उपायसें शीघ्रहि वशमें आयभी जाते हैं परंतु यह इन्द्रियरूप चोर तो (प्रमाथिनः) कहिये बडे प्रमाथी अर्थात् क्लेश देनेहारे दुर्जय हैं किसी प्रकारसें वशमें आने अत्यंत कठिन हैं ।। तथा यह वार्ता भगवद्गीताके द्वितीयाध्यायमेंभी कथन करी है "इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः" अर्थ—हे अर्जुन, यह इन्द्रिय बडी दुर्जय हैं काहेतें यह यत्नशील पुरुषोंके मनकूंभी बलात्कारसें स्वस्व-विषयोंकी तरफ खेंचकरके ले जाती हैं इति ।। तथा भागवतमेंभी कहा है "जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा शिश्नोन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।। घ्राणोन्यतश्चपल-दृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनंति" अर्थ—इस पुरुषकूं जिह्वा इन्द्रिय तो अपना जो रस विषय है तिसकी तरफ खेंचती है और पिपासा अपनी तरफ खेंचती है और लिंग इन्द्रिय अपने विषयकी तरफ खेंचता है तथा त्वचा अपने विषयकी

तरफ खेंचती है और उदर अपनी तरफ और श्रोत्र अपनी तरफ नासिका अपनी तरफ चपल नेत्र अपनी तरफ हस्त और पाद अपनी तरफ खेंचते हैं इस प्रकार जैसे किसी एक पुरुषकी वहुतसी स्त्रियां होवें और सो सर्वेहि अपनी अपनी तरफ खेंचनेसें पुरुषकूं क्लेश देवें तैसेहि यह इन्द्रियरूप स्त्रियां आत्मरूप पुरुषकूं क्लेश देती हैं इति ॥ सो इस प्रकारसें सर्वदा मेरे देहविषे स्थित भये भी चोरोंकूं मैं अबपर्यंत कदाचित्भी नहि देखता भया हुं सो (मम पश्यताज्ञतां) कहिये हे विवेकी पुरुषो, देखो यह मेरी क्या मूर्खता है इति ॥ २९ ॥ किं च पतंगेति—

पतंगमीनेभमृगालयो लयं
प्रयांति पंचेन्द्रियपंचगोचरैः ॥
मया तु तत्पंचकमेव सेव्यते
गतिर्न जाने मम का भविष्यति ॥ ३० ॥

टीका—पतंग एक चक्षु इन्द्रियका विषय जो रूप है तिसके अर्थ दीपकमें पतित होयकर मृत्युकूं प्राप्त होवे है और मीन जो मछली है सोभी जिह्वा इन्द्रियका विषय जो रस है तिसके अर्थ लोहकुंडीकूं भक्षण करके मृत्युकूं प्राप्त होवे है तथा इभ जो हस्ती है सोभी

एक लिंग इन्द्रियका विषय जो स्पर्श है तिसके अर्थ मिथ्याहास्तिनीके पीछे गर्तमें पतित होयकरके नाशकूं प्राप्त होवे है ॥ तथा मृग जो हरिण है सोभी एक श्रोत्र इन्द्रियका विषय जो शब्द है तिसके अर्थ वीणाका शब्द सुनकरके व्याधके वशीभूत भया मृत्युकूं प्राप्त होवे है तथा अलि जो भ्रमर सोभी एक घ्राणइन्द्रियका विषय जो सुगंध है तिसके कारण रात्रीमें कमलके संकुचित होनेतें कंटकसें विद्ध भया मृत्युकूं प्राप्त होवे है सो इस प्रकारसें (पंचेन्द्रियगोचरैः) कहिये पांच इन्द्रियोंके एक एक विषयके सेवन करनेतें उक्त पांचोंहि नाशकूं प्राप्त होते हैं और (मया तु) कहिये मैं तो एकलाहि तिन पांच विषयोंका सर्वदा आदरपूर्वक सेवन करता हुं सो मैं नहि जानता कि मेरी (गतिः) कहिये क्या दशा होवेगी ॥ तथा यह वार्ता अन्यत्रभी कथन करी है "कुरंगमातंगपतंगभृंगमीना हताः पंचभिरेव पंच। एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव पंच" अर्थ—मृग हस्ति पतंग भ्रमर मीन यह पांचोंहि पांच विषयोंकूं भिन्न भिन्न सेवन करके नाशकूं प्राप्त होते हैं और जो एकहि प्रमादी पुरुष तिन पांचोंका सेवन करे है सो किस प्रकारसें नाशकूं

नहि प्राप्त होवेगा अर्थात् अवश्य होवेहिगा इति ॥३०॥
इस प्रकार उक्त रीतिसें इन्द्रियोंकी दुष्टताका वर्णन करके अब अपने मनकी दुष्टता दो श्लोकोंकरके निरूपण करे है ॥ यथेति—

यथाऽहितुंडे पतितोऽपि भेडकः
समीहतेऽत्तुं मशकानचेतनः ॥
तथांतकास्यांतरितः समंतत-
स्तथापि कांक्षे विषयानहो जडः ॥ ३१ ॥

टीका—जैसे भेडककूं सर्प पकड लेवे है और सो मूर्ख (अहितुंडे पतितोपि) कहिये तिस सर्पके मुखमें पीछले भागसें ग्रसा हूयाभी पुनः बाह्य जो मच्छर उडते हैं तिनकूं भक्षण करनेके अर्थ अपने मुखसें ग्रहण करनेकूं चाहता है तैसेहि कालरूप सर्पने जीवरूप भेडकोंकूं पकडा हुया है अर्थात् जिस जिस पुरुषकी जितनी जितनी आयुष्य व्यतीत हो गई है तिसका उतना उतनाहि पीछला भाग कालरूप सर्पके मुखमें ग्रसा हुया है सो इस प्रकारसें मैं जड कहिये मूर्ख तो (समंततः) कहिये सर्व तरफसें ग्रीवापर्यंत (अंतकास्यांतरितः) कहिये कालरूप सर्पके मुखमें ग्रसा हुयाभी पुनः विषरूप मच्छरोंके

भोगनेकी वांछा करता हुं अहो कहिये यह क्या मेरे मनकी दुष्टता है इति ॥ ३१ ॥ इस प्रकारसें वर्णन करके अब पुनः अपने मनकी दुष्टता निरूपण करे है ॥ सितं शिर इति ॥

सितं शिरः संपतिता रदावली
मुखं वलिव्रातवृतं च चक्षुषी ॥
गतप्रभे मे शिथिलायते वपु-
स्तथापि चेतो युवतिं स्मरत्यहो ॥ ३२ ॥

टीका—(सितं शिरः) कहिये मेरा शिर तो सर्व बालोंकरके श्वेत हो गया है और (संपतिता रदावली) कहिये मुखमें स्थित जो दंतोंकी पंक्ति थी सोभी सर्वहि पतित हो गई है तथा मुखभी (वलिव्रात) कहिये सर्व तरफसें वलियोंके समूहकरके आच्छादित हो गया है तथा दोनों नेत्रभी (गतप्रभे) कहिये प्रभासें हीन हो गये हैं अर्थात् तिनकरके सम्यक् प्रकारसें पदार्थ देख नहि पडते हैं तथा (शिथिलायते वपुः) कहिये शरीरके हस्तपादादिक सर्व अवयवभी शिथिल होते जाते हैं इस प्रकारकी दशा होनेतेंभी मेरा जो चित्त है सो (युवतिं स्मरति) कहिये यौवनावस्थाकी सुंदर स्त्रीका स्मरण करता है अर्थात् भोगनेको

वाञ्छता है सो अहो कहिये यह क्या बडे आश्चर्यकी वार्ता है (यहां स्त्रीशब्दमें दूसरे विषयोंकाभी ग्रहण जानना) तथा यह वार्ता एक वृद्ध सज्जननेंभी कथन करी है "वपुः कुब्जीभूतं गतिरपि तथा यष्टिशरणा विशीर्णा दंतालिः श्रवणविकलं श्रोत्रयुगलम् ॥ शिरः शुक्लं चक्षुस्तिमिरपटलैरावृतमहो मनो मे निर्लज्जं तदपि विषयेभ्यः स्पृहयति" अर्थ—शरीर तो मेरा कुबडा हो गया है और चलनाभी यष्टिकाके आश्रयसें होवे है तथा मुखसें सर्व दांतभी पड गये हैं और दोनों श्रोत्रोंसें शब्दभी श्रवण नहि होवे है तथा शिरके बालभी सर्व श्वेत हो गये हैं और नेत्रभी तिमिरके पडदोंकरके आच्छादित हो गये हैं तोभी अहो कहिये यह बडे आश्चर्यकी वार्ता है कि मेरा निर्लज्ज मन विषयोंकी वांच्छा करता है इति ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसें मनकी दुष्टता निरूपण करके अब ईश्वरकी मायाकी प्रबलता दिखलावे है ॥ अधः शिरस्केनेति ॥

अधःशिरस्केन दुरंतसंकटे
मया यदंबाजठरे विनिश्चितम् ॥
स्मरामि नाद्यापि तदुद्धताशयो
मुरारिमाया हि किलातिदुस्तरा ॥ ३३ ॥

टीका—(दुरंतसंकटे) कहिये मल मूत्र जठरानल कृमी आदिकरके पूर्ण महासंकटे स्थानभूत माताके उदरविषे जिस कालमें मैं (अधःशिरस्केन) कहिये नीचेको शिर और ऊपरको पाद करके लटक रहा था तो तहां जो जो वार्ता मैनें निश्चय कीथी कि यहांसें बाहिर निकलकरके ऐसा ऐसा करूंगा सो मैं स्त्री आदिक विषयोंमें निरंतर आसक्त होनेतें विवेकसें भ्रष्ट भया (अद्यापि) कहिये अव वृद्धावस्थाकूं प्राप्त भयाभी तिस वार्ताकूं स्मरण नहि करता हुं यातें (मुरारिमाया) कहिये यह जाननेमें आवे है कि मुरारि जो भगवान् नारायण है तिनकी माया बडी दुस्तर है जिसने मेरेकूं इस संसारके मिथ्या व्यवहारोंमें फसायकरके भुलाय दिया है तथा गीतामेंभी कहा है "दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया" अर्थ—हे अर्जुन, यह जो त्रिगुणरूप मेरी दैवीशक्ति माया है सो तिसका तरना बहुत कठिन है इति ॥ माताके उदरमें स्थित भया बालक जो जो निश्चय करे है सो सर्वहि अथर्ववेदकी गर्भउपनिषदमें लिखा है सो प्रसंगसें यहां संक्षेपसें दिखावे हैं ॥ तहां यह प्रकार लिखा है कि ऋतु-

कालमें स्त्रीपुरुषके संयोग होनेतें जो वीर्य गर्भमें स्थित हो जावे है तो सो वीर्य एकरात्रिमें किंचित् सघन हो जावे है और पश्चात् सप्तरात्रिमें जलके बुद्बुदके समान हो जावे है और अर्धमासमें पिंडाकार हो जावे है मासभरमें अधिक कठिन हो जावे है द्विमासमें तिसमें शिर बन जावे है तीसरे मासमें दोनों पाद निकल आते हैं चतुर्थ मासमें गुल्फ कटि उदर यह तीनों उत्पन्न होवे हैं पंचम मासमें पृष्ठवंश होवे है और षष्ठ मासमें मुख नासिका नेत्र उत्पन्न होवे हैं सप्तम मासमें तिसमें चेतनता प्रकट होवे है अष्टम मासमें सर्व लक्षणोंकरके संपूर्ण होवे है पश्चात् नवम मासमें सर्व ज्ञानकरके संपन्न होवे है तो पश्चात् अपने सर्व पूर्वजन्म और शुभाशुभ कर्मोंकूं स्मरण करके अत्यंत विरागकूं प्राप्त भया इस प्रकार ईश्वरसें प्रार्थना करे है "पूर्वयोनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया ॥ आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः ॥ जातश्चाहं मृतश्चाहं मृतो जातः पुनः पुनः ॥ अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियां ॥ यदि योन्याः प्रमुच्येहं तत्पद्ये महेश्वरं ॥ यदि योन्याः प्रमुच्येहं तत्सांख्यं योगमभ्यसे ॥ यदि योन्याः

प्रमुच्येऽहं ध्याये ब्रह्म सनातनम्” अर्थ—हे ईश्वर, पूर्वयुगोंमें मैंने हजारोंहि नीच ऊंच योनियां देखी हैं और अनेक प्रकारके आहार भक्षण किये हैं तथा नानाप्रकारके हजारों माताके स्तनपान किये हैं और अनेकवार जन्मा और मरा पुनः जन्मा मरा इस प्रकार वारंवार जन्मता मरता रहा हुं सो अब इस गर्भरूप दुःखके समुद्रमें डूबा हुया मैं अपने उद्धार करनेका कोई उपाय नहि देखता हुं यातें ईश्वर, जो अबके इस योनिसें बाहिर निकलूंगा तो महेश्वर जो महादेव अथवा विष्णु भगवान् हैं केवल तिनहिका आराधन करूंगा तथा सांख्य और योगकाहि अभ्यास करूंगा और केवल सनातन जो परिपूर्ण ब्रह्म है तिसहिका अहर्निश ध्यान करूंगा इति ॥ इस प्रकारसें प्रार्थना करता हुया सो जीव जब गर्भसें बाहिर आवे है तो सो सर्व ज्ञानकूं भूल जावे है यह वार्ता भी तहां हि कथन करी है “जातमात्रस्तु वैष्णवेन वायुना संस्पृष्टस्तदा न स्मरति जन्ममरणानि न च कर्म शुभाशुभं विन्दति” अर्थ—(जातमात्रः) कहिये माताके गर्भसें केवल वाहिर निकलतेहि जब तिसका वैष्णव नाम वाह्य वायुके साथ स्पर्श होवे है तो

पश्चात् सो जीव अपने पूर्वके जन्ममरण और शुभाशुभ कर्मोंकूं नहि स्मरण करे है अर्थात् सर्व भूल जावे है इति ॥ ३३ ॥ इस प्रकारसें गर्भका निश्चय दिखलायकरके अब तिसके विपरीत अपना आचरण वर्णन करे है ॥ करोमीति—

करोमि दुष्कर्म सदा प्रयत्नः
फलं तु वाञ्छामि सुखं सुकर्मणः ॥
करंजमारोप्य तु केन भुज्यते
फलं रसालस्य बतेयमज्ञता ॥ ३४ ॥

टीका—(सदा) कहिये जन्मसें लेकर अबपर्यंत मैं प्रयत्नपूर्वक (दुष्कर्म) कहिये असत्यभाषण कूटव्यापार परस्त्रीगमन इत्यादि दुःखके हेतुभूत पापकर्मोंकाहि आचरण करता रहा हुं ॥ और तिसके विपरीत अब इस लोक और परलोकविषे पुण्यकर्मोंका फलभूत जो सुख है तिसकी वांछा करता हुं सो यह वार्ता कैसे हो सकती है काहेतें (करंजमारोप्य) कहिये प्रथम करंजका वृक्ष लगायकरके पश्चात् कौन पुरुष आम्रके फलोंकू भक्षण करे है अर्थात् कोईभी नहि करे है यातें (बतेयमज्ञता) कहिये सो यह मेरी बडी आश्चर्य मूर्खता है तथा जीवन्मुक्तिप्रकरणमेंभी कहा है "पुण्यस्य

फलमिच्छंति पुण्यं नेच्छंति मानवाः ॥ न पापफल-मिच्छंति पापं कुर्वंति यत्नतः" अर्थ—स्वभावसेंहि सर्व प्राणी पुण्यकर्मका फल जो सुख है तिसकी सर्वदा वांछा करते हैं और प्रायः पुण्यका आचरण नहि करते हैं तथा पापका फल जो दुःख है तिसकूं कोईभी नहि चाहता परंतु सर्वदाहि प्रयत्नपूर्वक पापकर्मोंका आचरण करते है यह क्या आश्चर्यकी वार्ता है इति ॥ ३४ ॥ इस प्रकार पूर्वोक्तरीतिसे मनकी मूर्खताका निरूपण करके अब तिस मनसें परे अपने आत्माके स्वरूपकूं नहि जानकरके कहे है ॥ कोऽहमिति—

कोऽहं कथं केन कुतः समुद्गतो
यास्यामि चेतः क्व शरीरसंक्षये ॥
किं मेऽस्ति चेहागमने प्रयोजनं
वासोऽत्र मे स्यात्कति वासराणि वा ३५

टीका—(कोऽहं) कहिये मैं कौन हुं और किस प्रकारसें उत्पन्न भया हुं तथा (केन) कहिये मैं किस हेतु करके उत्पन्न भया हुं और (कुतः समुद्गतः) कहिये किस वस्तुसें उत्पन्न भया हुं तथा इस शरीरके नाश हो जानेके अनंतर यहांसें मैं पुनः कहां जाऊंगा तथा (किं मेऽस्ति चेहागमने प्रयोजनं)

कहिये इस मनुष्यलोकविषे मेरे आनेका क्या प्रयोजन है और अब इस लोकमें (कति वासराणि) कहिये कितने दिनपर्यंत मेरा निवास रहेगा इति ॥३५॥ यहां पर्यंत ग्रंथकारनें मुमुक्षु पुरुषके विचारद्वारा वेदांतशास्त्रमें आत्मज्ञानके अधिकारी पुरुषके जो जो लक्षण कथन किये हैं सो सर्वहि सूचन किये हैं॥ जैसे कि नवम श्लोकमें जो कहा कि मैं अज्ञानकी शक्तियांकरके प्रेरित भया अबपर्यंतभी अपने आत्माके हितकारक वस्तुकूं नहि देखता भया हुं तथा पुनः एकादशवें श्लोकविषे जो कहा है कि मैं आहार-निद्रादिकोंके तत्पर होयकर पशुकी न्याई विचारसें शून्य भया अपने शरीरविषेहि भये आत्माकूं नहि देखता भया हुं सो इत्यादिकरके ज्ञानका प्रथम साधन जो आत्मा और अनात्माका विवेक है सो सूचन किया है तथा पश्चात् कुटुंब स्त्रीपुत्र और धनविषे दोषदृष्टि निरूपणद्वारा ज्ञानका द्वितीय साधन जो इस लोक और परलोकके भोगोंसें ग्लानि-रूप वैराग्य है सो सूचन किया है काहेतें परलोकके स्वर्गादिक भोगोंकी प्राप्तिभी यहांके स्त्रीपुत्रधनादि-कोंसे होवे है काहेतें स्त्रीपुत्रादिकोंकी सहायतासें

धनके यज्ञादिकोंमें व्यय करनेसेंहि स्वर्गादिकोंकी प्राप्ती होवे है ॥ तथा पुनः जिह्वादि इन्द्रियोंकी दुष्टता वर्णन करनेसें तो भोगमात्रसेंहि विराग दिखलाया है काहेतें यावत्मात्र ब्रह्मलोकपर्यंत भोग हैं सो सर्व इन्द्रियोंकरकेहि भोगे जाते हैं तथा इसहि द्वारा इन्द्रियोंका दमनरूप जो दम है सोभी सूचन किया है तथा मनकी दुष्टता वर्णनद्वारा मनका निग्रहरूप जो शम है सो सूचन किया है ॥ तथा चौवीसवें श्लोकविषे जो कहा है कि जो विश्वंभर परमात्मा चराचर जगत्का पोषण करता है सो क्या मेरेकूं अन्नादि नहि देवेगा इसकरके क्षुधापिपासादिक द्वंद्वोंका सहनरूप जो तितिक्षा है सो सूचन करी है ॥ तथा इस समीप उक्त पैंतीसवें श्लोकमें जो कहा कि मैं कौन हुं और कहांसे उत्पन्न भया हुं इस प्रकारसें अभ्यंतरविचारद्वारा मनकी स्थिरतारूप जो समाधान है सो सूचन किया है ॥ तथा श्रद्धा और विश्वास तो आगे गुरुकी शरण जानेसेंहि सूचित होवे है ॥ इस प्रकारसे शम दम श्रद्धा समाधान तितिक्षा विश्वास इन षट्का समूहरूप जो ज्ञानका तीसरा साधन षट्संपत्ति है सो सूचन किया है ॥

तथा उन्नीसवें श्लोकमें जो कहा है कि हे ईश्वर, मैं कपोतकी न्यांई कुटुंबरूप जालमें फसा हुया किस प्रकारसें छूटूंगा और पुनः सताईसवें श्लोकमें जो कहा कि अनादि अविद्यारूप तिमिरकरके मेरे ज्ञानरूप नेत्र आच्छादित हो गये हैं सो तिस तिमिरके निवृत्त करने-हारा अंजन क्या होगा इत्यादिद्वारा ज्ञानका चतुर्थ साधन जो मुमुक्षुता है सो सूचन करी है ॥ सो इस प्रकारसें अधिकारीके सर्व लक्षण सूचन करके अब तिसके अनंतर जो गुरुकी शरण जानारूप ज्ञानका अंतरंग साधन है सोभी तिस मुमुक्षु पुरुषके द्वाराहि दर्शावे हैं ॥ इत्थमिति—

इत्थं सुधीः शुद्धधिया निरंतरं
संचिंतयन्नप्यगमन्न निश्चयम् ॥
खिन्नांतरंगस्तु ततः समित्करो
गत्वाभ्युवाचात्मविदांवरं गुरुम् ॥ ३६ ॥

टीका—(इत्थं) कहिये इस पूर्वोक्त प्रकारसें नवम श्लोकसें आरंभकरके यहांपर्यंत सो श्रेष्ठ बुद्धिमान् मुमुक्षु पुरुष अपनी शुद्ध बुद्धिकरके निरंतर वारंवार (संचिंतयन्) कहिये विचार करता हुयाभी अपने स्वरूपके निश्चयकूं नहि प्राप्त होता भया ॥ तथा

यजुर्वेदकी कठउपनिषत्‌मेंभी कहा है "नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ" अर्थ— हे प्रियतम नचिकेता, यह आत्मज्ञानरूप मति केवल अपनी बुद्धिके विचारनेसें प्राप्त नहि होवे है किंतु तत्त्ववेत्ता गुरुके उपदेशद्वाराहि तिस ज्ञानकी प्राप्ति होवे है इति ॥ तो पश्चात् सो मुमुक्षु (खिन्नांतरंगः) कहिये चित्तमें खिन्नताकूं प्राप्त भया अर्थात् अति उत्कट जिज्ञासाकरके संयुक्त भया (समित्करः) कहिये विधिपूर्वक हस्तोंमें भेट लेकर कोई एक (आत्मविदांवरं) कहिये आत्मतत्त्वके जाननेहारे ज्ञानी पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्थात् ब्रह्मश्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरण जायकरके वक्ष्यमाण रीतिसें प्रश्न करता भया ॥ काहेतें एकला ब्रह्मश्रोत्रिय गुरु होवे और ब्रह्मनिष्ठ नहि होवे तो शिष्यकूं तिसके वाक्यमें ठीक ठीक श्रद्धा नहि होवे है और जो ब्रह्मनिष्ठ होवे और श्रोत्रिय नहि होवे तो सो शिष्यके सर्व संशयोंकूं सम्यक् प्रकारसें छेदन नहि कर सकै है ॥ यातें उक्त दोनों विशेषणोंकरके संयुक्त गुरुकीहि शरणमें शिष्यको जाना चहिये ॥ यह वार्ता अथर्ववेदकी मुंडक उपनिषत्‌मेंभी कथन करी है "तद्वि-

ज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" अर्थ—जिज्ञासु पुरुषको तिस आत्माके ज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ हस्तोंमें कुछ भेट लेकरके ब्रह्म-श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरुकीहि शरणमें जाना चहिये इति ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसें तिस मुमुक्षु पुरुषका गुरुके समीप गमन वर्णन करके अब ग्रंथकी समाप्तिपर्यंत तिनके संवादद्वारा वेदांतशास्त्रका सर्व रहस्य संक्षेपसें दर्शावे हैं ॥ तहां प्रथम शिष्यके प्रश्नका उत्थान करे हैं—

॥ शिष्य उवाच ॥

भवार्णवे जन्मजरातिमिंगिले
तृषाऽनले मोहविवर्तसंकुले ॥
निमज्जतो मे किमु तारकं दृढं
वदार्तबंधो ! मयि चेदनुग्रहः ॥ ३७ ॥

टीका—भवार्णव इति ॥ हे (आर्तबंधो) कहिये दीन पुरुषोंके सहाय करनेहारे गुरो, (भवार्णवे) कहिये यह संसाररूप एक महासमुद्र है काहेतें जैसे विना जहाजसें समुद्रका तरणा अति कठिन होवे है तैसेहि इस संसाररूप समुद्रकाभी तरणा अत्यंत कठिन है ॥ सो जैसे समुद्रविषे जीवोंका क्लेश देने-हारे नाना प्रकारके ग्राह मत्स्य मकरादि क्रूर जंतु

सर्वदाहि रहते हैं तैसेहि संसाररूप समुद्रमें (जन्मजरातिमिंगिले) कहिये जन्म और जरारूप क्रूर जंतु रहते हैं यहां जन्म जरा यह दोनों मरण शीत उष्ण क्षुधा पिपासा राग द्वेषादिकोंकेभी उपलक्षण हैं ॥ और जैसे समुद्रमें जलके शोषण करनेहारा वडवानल सर्वदा रहता है तैसेहि संसाररूप समुद्रमें (तृषानले) कहिये तृष्णारूप वडवानल रहता है ॥ और जैसे समुद्रविषे जलके महाचक्र होवे हैं तैसेहि संसाररूप समुद्र (मोहविवर्तसंकुले) कहिये अज्ञानरूप महाचक्रकरके व्याप्त होय रहा है काहेतें जैसे जलके चक्रमें पडे हुये जीव नीचेसें नीचेहि चले जाते हैं तैसेहि अज्ञानरूप चक्रमें पडे हुयेभी नीचेसें नीचेहि चले जाते हैं अर्थात् वारंवार सर्प श्वान सूकरादि योनियोंमें भ्रमते रहते हैं सो हे भगवन्, इस प्रकारके घोर संसाररूप समुद्रविषे मैं डूबता हुया चला जाता हूं सो इसमें (किमु तारकं दृढं) कहिये ऐसा कौन तरनेका दृढ साधन हैं कि जिसके आश्रय होयकरके मैं इससें पार हो जावुं सो (मयि चेदनुग्रहः) कहिये हे भगवन्, जो मेरे ऊपर आपका अनुग्रह होवे और आप मेरेकूं अधिकारी समझें तो कृपा करके इसका उत्तर

मेरे प्रति कथन करो इति ॥ ३७ ॥ इस प्रकार शिष्यका विनयपूर्वक प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका अनुवाद करते हुये उत्तर कहे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

संसारदुष्पारमहोदधौ नृणां
तुंबीवदेवोर्ध्वमधश्च मज्जताम् ॥
गोविन्दपादांबुरुहैकचिंतनं
पोतं वदंतीह दृढं विपश्चितः ॥ ३८ ॥

टीका—संसारेति ॥ हे शिष्य, इस संसाररूप दुष्पार कहिये अत्यंत दुस्तर महासमुद्रविषे तुंबीफलकी न्याई सर्वदाहि (निमज्जतां) कहिये नीचे ऊपर अर्थात् देवता मनुष्य पशु पक्षी सर्पादि नाना प्रकारकी ऊंच नीच योनियोंविषे भटकते हुये पुरुषोंको केवल (गोविंदपादांबुरुहैकचिंतनं) कहिये विष्णु भगवान्‌के चरणकमलोंका जो एकाग्रचित्त होयकरके चिंतन करना है तिसहिकूं विद्वान लोक जहाज कहते हैं अर्थात् सोई संसारसमुद्रसें पार होनेका साधन है सो यह जहाज (दृढं) कहिये अति दृढ है अर्थात् मार्गमेंहि किसी विघ्नरूप वायु आदिकोंकरके टूटने वाला नहि है और जो भगवत्‌भक्तिसें रहित केवल

कर्मकांडरूप जहाज है सो संसाररूप समुद्रके पार करनेमें समर्थ नहि होवे है ॥ यह वार्ता अथर्ववेदकी मुंडक उपनिषत्‌मेंभी कथन करी है "प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः" अर्थ—यह जो यज्ञादिरूप कर्म हैं सो अदृढ कहिये फूटी हुई अल्प नौकाके तुल्य हैं इति ॥ यातें संसाररूप समुद्रके पार जानेकी इच्छावान् पुरुषको तो अन्य सर्व उपायोंका परित्याग करके केवल भगवत्‌के चरणकमलोंकाहि सर्वथा आश्रय करना योग्य है ॥ तथा यह वार्ता भगवत्‌गीतामेंभी श्रीकृष्णजीनें कथन करी है "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥ अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः" अर्थ—हे अर्जुन, तुं मेरी भक्तिसें शून्य अन्य सर्व धर्मोंका परित्याग करके केवल मेरीहि शरणकूं प्राप्त होहु और जो तूं कहे की सर्व धर्मोंके परित्याग कर देनेसें मेरेकूं प्रत्यवाय होवेगा सो यह भी शोच मत कर काहेतें मैं तेरेकूं सर्व पापोंसें मुक्त कर देवूंगा इति ॥ तथा अन्यत्र भी कहा है "रे चित्त चिंतय चिरं चरणौ मुरारेः पारं गमिष्यसि यतो भवसागरस्य ॥ पुत्राः कलत्रमितरे नहि ते सहायाः सर्वं विलोकय सखे मृगतृष्णिकाभम्" ॥ अर्थ—हे चित्त, तूं चिरकालपर्यंत

मुरारि जो नारायण हैं तिनके चरणोंकाहि चिंतन कर जिसमें तुं इस संसाररूप समुद्रसें पार हो जावेगा काहेतें अंतकालमें यह स्त्री पुत्र और अन्य कुटुंबके लोक कोई भी तेरे सहायक नहि होवेंगे यातें हे सखे, इस सर्व जगत्कूं तुं मृगतृष्णाके जलके समान मिथ्या देख इति ॥ ३९ ॥ इस प्रकारसें गुरुके मुखसें यथावत् उत्तर श्रवण करके अब पुनः शिष्य द्वितीय प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

इहैव संत्यज्य गृहं सबांधवं
धनं शरीरं च गतस्य देहिनः ॥
भवेदमुत्रास्य सहायकस्तु कः
सुहृद्वदेतद्वद वेदविद्विभो ॥ ३९ ॥

टीका—इहैवेति ॥ हे (वेदविद्विभो) कहिये सर्व वेदोंके जाननेहारे भगवन्, जिस कालमें (इहैव संत्यज्य) कहिये मृत्युके वश भया पुरुष सहित बंधुजनोंके अपने गृह और धन तथा शरीरका यहांहि परित्याग करके परलोककूं गमन करे है तो तिस कालमें वहां तिसका (सुहृद्वत्) कहिये मित्रकी न्यांई कौन सहायक होवे है सो यह कृपा करके मेरेप्रति कथन करो

इति ॥ ३९ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका परलोकसंबंधी प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका उत्तर कहे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

वधूर्जनित्री जनकः सहोदरः
सुतो धनं मित्रममुत्र गच्छता ॥
समेति साकं न सहायकोऽपि को
विना स्वधर्मेण नरेण वै क्वचित् ॥ ४० ॥

टीका—वधूरिति ॥ हे शिष्य, (अमुत्र गच्छता) कहिये जिस कालमें यह पुरुष मरकरके परलोककूं जावे है तो वधू जो स्त्री है और जनित्री जो माता है तथा जनक जो पिता है और सहोदर जो भाई है तथा धन जो विपुल ऐश्वर्य है और मित्र जो अपना सुहृद है सो इन सर्वमेंसें तिस कालमें इस पुरुषका (न सहायकोऽपि कः) कहिये कोईभी सहायता करनेहारा साथ नहि जावे है विना अपने अनुष्ठान किये हुये धर्मके अर्थात् अपना किया हुया धर्महि इस पुरुषके साथ परलोकमें सहायक जावे है ॥ यह वार्ता मनुस्मृतिमेंभी कथन करी है "नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ॥ न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः" अर्थ—पुरुषके साथ परलोकमें सहायता करनेहारा

न पिता न माता न पुत्र न स्त्री न अन्य ज्ञातिके लोक कोईभी नहि होवे है किंतु केवल स्वधर्महि स्थित होवे है इति ॥ हे शिष्य, यातें परलोकमें सहायकी इच्छावान् पुरुषको सर्वदा धर्मकाहि आचरण करना योग्य है ॥ तथा यह वार्ता तैत्तिरीय उपनिषत्मेंभी कथन करी है "धर्मं चर, धर्मान्न प्रमदितव्यं" अर्थ—हे पुरुष, तुं सर्वदाहि धर्मका आचरण कर धर्मसें किसी कालमेंभी प्रमाद नहि करना चाहिये इति ॥ तथा महाभारतके अंतमेंभी कहा है "न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ॥ धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः" अर्थ—पुरुषको कदाचित्भी परस्त्री आदि विषयक कामके वशीभूत होयकरके अथवा राजादिकोंके भयकरके अथवा धनादिकोंके लोभकरके किंच अपने जीवनेके अर्थभी धर्मका परित्याग नहि करना चाहिये काहेतें धर्म (नित्य) कहिये सदा संग रहनेहारा है और सांसारिक सुखदुःखभयादि तो अनित्य पदार्थ हैं और सुखदुःखादिकोंके हेतुभी अनित्य हैं और जीव नित्य कहिये अविनाशी है यातें अनित्य पदार्थोंके अर्थ नित्य धर्मका परित्याग नहि

करना चाहिये इति ॥ ४० ॥ इस प्रकारसें शिष्य धर्मकी प्रशंसा श्रवण करके पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

धर्मस्य मार्गा बहवो महर्षिभिः
संदर्शिता भुक्तिविमुक्तिसिद्धये ॥
कस्तेषु गम्यस्तु ममात्मशुद्धये
निःशेषधर्मैकरहस्यविद्गुरो ॥ ४१ ॥

टीका—धर्मस्येति ॥ हे गुरो, अपने कहा जो इस पुरुषका परलोकमें धर्महि एक सहायक होवे है दूसरा कोई नहि सो (धर्मस्य) कहिये तिस धर्मके मार्ग व्यासादि पूर्वके महर्षियोंनें भोग और मोक्षकी प्राप्तिके अर्थ अनेक प्रकारके महाभारतादिकोंमें (संदर्शिताः) कहिये सम्यक् प्रकारसें दिखलाये हैं अर्थात् प्रतिपादन किये हैं सो हे (निःशेषधर्मैकरहस्यवित्) कहिये सर्व धर्मोंके रहस्यके जाननेहारे गुरो, तिनमेसें अपने अंतःकरणकी शुद्धिके अर्थ मेरेको कौनसा मार्ग धर्मका ग्रहण करना चाहिये सो आप कृपा करके मेरे प्रति कथन करो इति ॥ ४१ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका तृतीय प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

वाचा च चित्तेन च कर्मणाऽपि यत्
संपालनं नित्यमवेक्ष्य शास्त्रतः ॥
सत्यस्य तद्धर्ममिहोत्तमं बुधाः
प्राहुस्ततस्तं हि समाश्रयाचिरम् ॥ ४२ ॥

टीका—वाचेति ॥ हे शिष्य, (वाचा) कहिये वाणीकरके और (चित्तेन) कहिये चित्तकरके तथा (कर्मणा) कहिये शरीरकरकेभी सर्वदाहि शास्त्रसें विचार करके जो सत्यका सम्यक् प्रकारसें पालन करना है तिसकूंहि (बुधाः) कहिये विद्वान् लोक सर्व अन्य धर्मोंसें उत्तम धर्म कथन करते हैं ॥ तिनमें जैसा देखा अथवा आप्त पुरुषके मुखसें श्रवण किया होवे तैसाहि भाषण करना और सर्व प्राणियोंका हितकारक और प्रिय भाषण करना काहेतें जिस सत्य भाषणसें किसी प्राणिकूं क्लेश प्राप्त होवे सो सत्यभी असत्यके समान होवे है यातें सत्य प्रिय और हित-कारक जो भाषण करना है सो वाचाका सत्य कहिये है ॥ तथा चित्तकरके किसी प्राणीकाभी जो अनिष्ट चिंतन नहि करना और सर्वके साथ सुहृद्भाव रखना है सो चित्तका सत्य कहिये है तथा अपने

शरीर करके किसी प्राणीकोभी जो क्लेश नहि देना और परस्त्रीगमनादि अशुभ कर्मोंका आचरण नहि करना है सो शरीरका सत्य है सो सत्य पालनकी सर्व धर्मोंसें उत्कृष्टता महाभारतके मोक्षपर्वमें देवतायोंके प्रति हंस रूप प्रजापतिनेंभी कथन करी है "सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥ न पावनतमं किंचित्सत्यादध्यगमं क्वचित्" अर्थ—हे देवतायो, सत्यहि स्वर्गमें आरोहण करनेकी सीढी है और सत्यहि संसाररूप समुद्रसें पार करनेहारी नौका है मैनें चतुर्दश भुवनोंमें ढूंढनेसेंभी सत्यसें परे अन्य पवित्र धर्म कोई नहि देखा है इति ॥ तथा अथर्ववेदकी मुंडकउपनिषत्मेंभी कहा है "सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पंथा विततो देवयानः" अर्थ—सत्यकीहि सर्वत्र जय होवे है असत्यकी नहि और सत्यकरकेहि उपासक लोक देवयानमार्गसें ब्रह्मलोककूं जाते हैं ॥ अथवा यहां सत्यशब्दकरके ब्रह्म जानना काहेतें "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इस यजुर्वेदके वाक्यमें ब्रह्मका नामभी सत्य कथन किया है ॥ सो वाचाकरके ब्रह्मकाहि कथन करना अर्थात् मुमुक्षु पुरुषोंके प्रति उपदेश करना और चित्तकरके ब्रह्मकाहि वेदांतशास्त्रकी युक्ति-

योंकरके मनन करना तथा शरीरकरके स्त्रीआदि-विषयोंका परित्याग एकांतसेवनादि तिसके अनुसा-रहि व्यवहार करना सो इस प्रकारसें मन वाणी तथा शरीरकरके जो सत्यका पालन करना है सोई सर्व धर्मोंसें श्रेष्ठ धर्म है ॥ यह वार्ता गीतामेंभी कथन करी है "सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिस-माप्यते" अर्थ—हे पार्थ कहिये अर्जुन, श्रुतिस्मृति-विहित सर्व कर्म ब्रह्मज्ञानमें समाप्त अर्थात् अभ्यं-तरहि हो जाते हैं इति ॥ यातें हे शिष्य (ततस्तं-हि समाश्रयाचिरं) कहिये जिस कारणसें सत्यहि सर्व धर्मोंसें श्रेष्ठ धर्म तिस कारणसें तुं (अचिरं) कहिये शीघ्रहि तिसकूं आश्रय कर इति ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसें धर्मविषयक निर्णय करके अब "तत्त्व-मसि" यह सामवेदकी छांदोग्यउपनिषत्का महा-वाक्य है सो इसमें तत् त्वं असि तीन पद हैं तिन-मेंसें प्रथम तत् पद ईश्वरका वाचक है और त्वं पद जीवका वाचक है तथा असि पद तिन दोनोंकी एकताका वाचक है इसहिके सम्यक् प्रकारसें जान-नेका नाम ब्रह्मज्ञान है सोई जन्ममरणरूप संसारबंध-नकी मुक्तिका कारण है ॥ सो जबपर्यंत जिज्ञासु

पुरुषकों प्रथम तत् और त्वं पदका भिन्न भिन्न यथार्थ बोध नहि हो जावे है तबपर्यंत तिन दोनोंकी एकताका ज्ञान होना असंभव है यातें तिन दोनोंकी एकताकी सिद्धिके अर्थ ग्रंथकार गुरु और शिष्यके संवादद्वाराहि प्रथम तिन दोनों पदोंका निरूपण करे है तिनमेंभी मुख्य होनेतें प्रथम सप्तदश श्लोकोंकरके तत्पदका विवेचन करे हैं ॥ तहां पूर्वोक्त धर्मका निर्णय श्रवणकरके अव शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

इदं जगच्चित्रचरित्रचित्रितं
विनिर्मितं केन कथं कुतस्तथा ॥
मृषाऽमृषा वापि ततो विलक्षणं
भवेदथानादि किमादिमन्मुने ॥ ४३ ॥

टीका—इदमिति ॥ हे मुने कहिये आत्मतत्त्वके मनन करनेहारे गुरो, यह जो (चित्रचरित्रचित्रितं) कहिये नानाप्रकारके विचित्र व्यवहारोंकरके संयुक्त और चतुर्दश भुवनोंकरके शोभायमान तथा देवता मनुष्य पशु पक्षी सर्प वृक्ष नदी समुद्रादि नानाप्रकारके विचित्र पदर्थोंकरके परिपूर्ण सर्व जगत् है सो (केन विनिर्मितं) कहिये किसनें निर्माण किया है

तथा किस प्रकारसें निर्माण किया है और कुतः कहिये किस वस्तुसें निर्माण किया है ॥ तथा (मृषाऽमृषा वा) कहिये यह सर्व जगत् क्या सत्य है किंवा असत्य है अथवा सत्य और असत्य दोंनोंसें विलक्षण है तथा यह (जगत् आदिमत्) कहिये आदिसें निर्माण किया गया है किंवा अनादिहि चला आता है ॥ सो यह सर्वहि भिन्न भिन्नकरके मेरेप्रति कृपाकरके कथन करो इति ॥ ४३ ॥ इस प्रकारसें जगत् विषयमें शिष्यके पांच प्रश्न श्रवणकरके अब गुरु क्रमसें तिनका एक श्लोक करकेहि उत्तर कहे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

यः सर्वगः सर्वविदक्षरः प्रभु-
र्मायाधिपस्तंतुरिवोर्णनाभितः ॥
तस्मादनिर्वाच्यमिदं प्रजायते
वेगात्मना चेदमनाद्युदाहृतम् ॥ ४४ ॥

टीका—य इति ॥ तहां जो शिष्यनें प्रथम प्रश्न किया कि यह जगत् किसनें निर्माण किया है तिसका उत्तर कहे हैं ॥ हे शिष्य (यः सर्वगः) कहिये जो परमात्मा सर्वत्र व्यापक है काहेतें यह नियम है कि

---

१ वेगशब्दोत्र प्रवाहवाचकः । वेगः प्रवाहजवयोरपीत्यमरः ॥

कार्यसें कारण बडा होवे है सो इस ब्रह्मांडके भीतर और बाह्य व्यापक होनेतें परमात्मा सर्वगत है ॥ तथा यह वार्ता श्रुतिमेंभी कथन करी है "आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः" अर्थ—सो परमात्मा आकाशकी न्यांई सर्वगत और नित्य है इति ॥ तथा जो परमात्मा (सर्ववित्) कहिये भूत भविष्यत् वर्तमान सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट सर्व पदार्थोंकूं करामलकवत् सर्वदा जाननेहारा है काहेतें यहभी नियम है कि जो कोई जिस वस्तुकूं निर्माण करे है तो तिसको प्रथम तिस वस्तुका ज्ञान अवश्य होवे है यातें अत्यंत विस्तृत और विचित्र चराचर जगत्का कारण होनेतें परमात्मा सर्वत्र है ॥ तथा श्रुतिमेंभी कहा है "यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः" अर्थ—जो परमात्मा सामान्य और विशेषरूपकरके सर्वके जाननेहारा है और जिसका ज्ञानरूपहि तप है इति ॥ तथा जो परमात्मा (अक्षरः) कहिये क्षरण जो विनाश है तिसतें रहित है यह वार्ता कैवल्यउपनिषत्मेंभी कथन करी है "सोऽक्षरः परमः स्वराट्" अर्थ—सो परमात्मा अक्षर और परम स्वतंत्र है इति ॥ तथा 'प्रभुः' कहिये ब्रह्मासें लेकर स्थाणुपर्यंत सर्व चराचर जगत्का नियंता सर्वशक्तिमान्

है सो हे शिष्य, सो परमात्माहि इस सर्व जगत्कूं निर्माण करे है ॥ यह वार्ता ऋग्वेदकी ऐतरेय उपनिषत्मेंभी कथन करी है "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किंचिन्मिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति स इमांल्लोकानसृजत" अर्थ—जगत्के आदिकालमें प्रथम यह सर्व एक परमात्माहि होता भया अन्य वस्तु किंचित्भी नहि थी सो परमात्मा जगत्के रचनेका संकल्प करता भया तो पश्चात् संकल्पकरके इन सर्व लोकोंकूं उत्पन्न करता भया इति ॥ इस प्रकारसें प्रथम प्रश्नका उत्तर कथन करके अब सो जगत्कूं किस प्रकारसें निर्माण करे है यह जो शिष्यका द्वितीय प्रश्न है तिसका उत्तर कहे हैं (मायाधिपः) कहिये हे शिष्य, जो परमात्मा अघटनघटनापटीयसी और अनिर्वचनीय जो माया शक्ति है तिसका अधिपति है अर्थात् जो परमात्मा मायाकूं आश्रय करके इस जगत्का निर्माण करे है ॥ यह वार्ता कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषत्मेंभी कही है "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्" अर्थ—सर्व जगत्के निर्माणमें हेतुभूत माया है और तिसका अधिष्ठाता परमात्मा जानना चहिये इति ॥ तथा गीतामें

कृष्णजीनेंभी कहा है "प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनःपुनः ॥ भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्" अर्थ—हे अर्जुन, मैं अपनी मायाशक्तिकूं आश्रयण करके प्रकृतिके परवश भये इस सर्व भूतप्राणियोंके समूहकूं वारंवार कल्पकल्पविषे निर्माण करताहूं इति ॥ इस प्रकारसें द्वितीय प्रश्नका उत्तर कहकरके अव सो किस वस्तुसें निर्माण करे है यह जो शिष्यका तृतीय प्रश्न है तिसका उत्तर कथन करे हैं (तंतुरिवोर्णनाभितः) कहिये हे शिष्य, जैसे ऊर्णनाभ[1]नामा जंतु बाह्य किसी वस्तुको नहि लेकरके केवल अपने शरीरसेंहि तंतुवोंका विस्तार करे है तैसेहि परमात्माभी किसी बाह्य वस्तुकी अपेक्षासें विनाहि इस जगत्को निर्माण करे है यह वार्ता यजुर्वेदकी तैत्तिरीयउपनिषत्में लिखी है "सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय तदात्मानं स्वयमकुरुत" अर्थ—जगत्के आदिकालमें सो परमात्मा मैं एकसें अनेक होयकरके उत्पन्न होवूं इस प्रकारका संकल्प करके पश्चात् सो परमात्मा अपने आपहि जगत्रूप हो जाता भया इति ॥ इस प्रकारसें तृतीय प्रश्नका

---

१ मकडी.

उत्तर कहकरके अब यह जगत् सत्य है किंवा असत्य है अथवा सत्य असत्य दोनोंसें विलक्षण है यह जो शिष्यका चतुर्थ प्रश्न है तिसका उत्तर कथन करे हैं (तस्मादनिर्वाच्यमिदं प्रजायते) कहिये हे शिष्य, तिस परमात्मासें यह सर्व जगत् अनिर्वाच्य उत्पन्न होवे है अर्थात् प्रत्यक्ष प्रतीति होनेतें असत्य नहि कहा जाय सके है और ज्ञानकालमें अभाव होनेतें सत्यभी नहि कहा जाय सके है यातें अनिर्वचनीय है ॥ तथा पंचदशीके चित्रदीपविषे विद्यारण्यस्वामिनेंभी कहा है "युक्तिदृष्ट्या त्वनिर्वाच्यं नासदासीदिति श्रुतेः। नासदासीद्विभातत्वान्नो सदासीच्च बाधनात्" अर्थ—युक्तिदृष्टिकरके तो यह जगत् अनिर्वचनीय सिद्ध होवे है काहेतें "नासदासीन्नो सदासीत्" इस श्रुतिमें कहा है कि यह जगत् उत्पत्तिसें प्रथम असत् नहि था और सत्यभी नहि था ॥ सो प्रत्यक्ष प्रतीत होवे है यातें असत् नहि है और ज्ञानकालमें इसका बाध हो जावे है इसलिये सत्यभी नहि है इति ॥ और वास्तव दृष्टिसें देखे तो सर्व मिथ्याहि है यह वार्ताभी तहांहि कथन करी है "तुच्छानिर्वचनीया च वास्तवी चेति सा त्रिधा। ज्ञेया माया त्रिभिर्बोधैः श्रौतयौक्तिकलौकिकैः"

अर्थ—यह जगत्रूप माया तीन प्रकारसें जाननी चाहिये तिनमेंसें लौकिक दृष्टिसें तो सत्य है और युक्तिसें विचारकर देखें तो अनिर्वचनीय सिद्ध होवे है और वेदांतशास्त्रकी दृष्टिसें तो मृगतृष्णाका जल आकाशकी नीलता शशकके शृंगकी न्यांई प्रत्यक्ष प्रतीत होनेतेंभी मिथ्याहि है इति ॥ इस प्रकारसें जगत्का मिथ्यापना सिद्ध करके अब यह जगत् आदिवाला है किंवा अनादि है यह जो शिष्यका पंचम प्रश्न है तिसमें प्रथमका निषेध करते हुये द्वितीय पक्षकूं अंगीकार करके उत्तर कहे हैं (वेगात्मना चेदमनाद्युदाहृतम्) कहिये हे शिष्य, वेग अर्थात् प्रवाहरूपकरके यह जगत् अनादि विद्वान् लोकोंनें कथन किया है ॥ तथा यजुर्वेदकी कठउपनिषत्मेंभी लिखा है "एषोऽश्वत्थः सनातनः" अर्थ—यह संसाररूप वृक्ष अनादिकालका है इति ॥ तथा ऋग्वेदके मन्त्रभागमेंभी लिखा है "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चांतरिक्षमथो स्वः" अर्थ—जिस प्रकारसें पूर्वकल्पोंमें सूर्य चंद्रमा और आकाश पृथिवी अंतरिक्ष स्वर्गादि थे तैसेहि स्मरण करके इस कल्पमें ब्रह्मा रचता भया है इति ॥ इससेंभी जगत् अनादि

सिद्ध होवे है ॥ तथा भगवद्गीतामेंभी कहा है "न रूप-मस्येह तथोपलभ्यते नांतो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा" अर्थ—हे अर्जुन, इस जगत्रूप वृक्षका रूप और अंत आदि तथा स्थिति नहि मिलती है इति ॥ ४४ ॥ इस प्रकार गुरुके मुखसें यथार्थ उत्तर श्रवण करके अब पुनः शिष्य तिसहि विषयमें प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

स्वकीयमुद्दिश्य किलेतरस्य वा
प्रयोजनं किंनु विना प्रयोजनम् ॥
विनिर्मिमीते जगदेतदीश्वरो
वदैतदज्ञानतमोनभोमणे ॥ ४५ ॥

टीका—स्वकीयमिति ॥ हे (अज्ञानतमोनभोमणे) कहिये अज्ञानरूप तमके नाश करनेमें सूर्यके समान गुरो, आपने कहा कि इस जगत्कूं ईश्वरनें निर्माण किया है सो ईश्वर इस जगत्कूं (स्वकीयं) कहिये अपने प्रयोजनके अर्थ निर्माण करे है किंवा (इतरस्य) कहिये किसी दूसरेके अर्थ निर्माण करे है अथवा (विनाप्रयोजनं) कहिये विनाहि किसी प्रयोजनसे करे है सो (वद) कहिये वह वार्ता कृपादृष्टिसें मेरेप्रति कथन

करो इति ॥ ४५ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका उत्तर कहे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

सदाप्तकामस्य तु नात्महेतवे
न चेतरस्यापि न चाप्यहेतुका ॥
जगत्क्रिया क्रीडनमेव केवलं
विभोर्वदंतीह तु वेदवादिनः ॥ ४६ ॥

टीका—सदेति ॥ हे शिष्य, (सदाप्तकामस्य) कहिये ईश्वर सर्वदाहि आप्तकाम है अर्थात् तिसकूं किसी वस्तुकी कामना नहि है ॥ यह वार्ता श्रुतिमेंभी कथन करी है "आप्तकामस्य का स्पृहा" अर्थ—ईश्वरको आप्तकाम होनेतें क्या इच्छा संभवे है अर्थात् कोईभी नहि इति ॥ तथा गीतामेंभी कहा है "न मां कर्माणि लिंपंति न मे कर्मफले स्पृहा" अर्थ—हे अर्जुन, मेरेकूं जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलयादि कर्म लिपायमान नहि करते काहेतें कि तिन कर्मोंके फलकी इच्छासें मैं रहित हुं इति ॥ यातें हे शिष्य, ईश्वरको निस्पृह होनेतें अपने प्रयोजनके अर्थ जगत्का निर्माण नहि संभवे है ॥ तथा जो शिष्यने कहा कि किसी

दूसरेके प्रयोजन अर्थ ईश्वर निर्माण करे है तहां कहे हैं (न चेतरस्यापि) कहिये हे शिष्य, तैसेहि इतर कहिये किसी दूसरेके अर्थभी ईश्वर इस जगत्का निर्माण नहि करे है काहेतें सामवेदकी छांदोग्य उपनिषत्में लिखा है कि "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेक-मेवाद्वितीयं" अर्थ—उद्दालकऋषि कहे हैं हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु, इस जगत्की उत्पत्तिसें प्रथम एक सत्‌रूप परमात्माहि अद्वितीय था अन्य कोई दूसरा पदार्थ नहि था ॥ यातें जगत्के आदि कालमें ईश्वरसें विना दूसरेके अभाव होनेतें किसी दूसरेके अर्थभी ईश्वरका जगत्का निर्माण करना नहि संभवे है ॥ तथा जो शिष्यने कहा कि विनाप्रयोजनसें निर्माण करे है तहां कहे हैं (न चाप्यहेतुका) कहिये हे शिष्य, यह जो जगत्क्रिया अर्थात् जगत्का निर्माण करना है तो विनाप्रयोजनसेंभी नहि संभवे है काहेतें यह लौकिक न्याय है कि "प्रयोजनमनुद्दिश्य न मंदोऽपि प्रवर्तते" अर्थ—प्रयोजनसें विना तो अल्पबुद्धिवाला पुरुषभी किसी कार्यमें प्रवृत्त नहि होवे है इति ॥ तो सर्वज्ञ जो ईश्वर है सो तो ऐसे महत्कार्यमें कैसेहि प्रवृत्त हो सके है सो इस प्रकारसें उक्त तीनों पक्षोंके असंभव

होनेतें अब गुरु समाधान कहे हैं (क्रीडनमेव केवलं विभोः) कहिये हे शिष्य, यह जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करना केवल तिस विभु परमात्माका क्रीडन अर्थात् लीलाविहार है ऐसे (वेदवादिनः) कहिये वेदके जाननेहारे व्यासादिक मुनि लोक कथन करते हैं ॥ यह वार्ता शारीरक सूत्रोंके द्वितीयाध्यायमें व्यास मुनिनेभी कथन करी है "लोकवत्तु लीलाकैवल्यं" अर्थ—जिस प्रकारसें इस लोकविषे राजा आदि पूर्णकाम भयेभी केवल लीलाके अर्थ शिकार खेलन आदि क्रिया करते हैं तैसेहि ईश्वर भी केवल लीलाके अर्थहि इस जगत्का निर्माणादि करे है इति ॥ ४६ ॥ इस प्रकारसें जगत्का कारण परमात्माकूं श्रवण करके अब जगत्की स्थितिविषयक शिष्य प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

निशाकरेन्द्रार्कयमानलानिला
धराधराधारनदीनदीश्वराः ॥
भयेन कस्याखिलशक्तिधारिणः
सदैव भीता नियतिं त्यजंति नो ॥ ४७ ॥

टीका—निशाकरेति ॥ हे गुरो, निशाकर जो चंद्रमा है और इन्द्र जो देवतायोंका राजा है तथा अर्क

जो सूर्य है और यम कहिये यमराज और अनल जो अग्नि देवता है तथा अनिल जो वायु है और धरा जो पृथिवी है तथा धराधार जो हिमालयादिक पर्वत हैं और नदी जो गंगायमुनादि नदियां हैं तथा नदीश्वर जो नदियोंके पति समुद्र है सो यह सर्वहि हे भगवन्, (भयेन कस्य) कहिये ऐसा कौन सर्व शक्तियोंके धारण करनेहारा पुरुष है कि जिसके भयकरके सर्वदाहि भयभीत भये आपोअपनी (नियतिं) कहिये मर्यादाकूं नहि छोडते हैं. सो कृपाकरके मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ४७ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका उत्तर कहे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

यमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तथोद्यतं वज्रमपि श्रुतिर्जगौ ॥
भयेन तस्याखिलमेव कंपते
यथेह राज्ञोऽनुचरादिकं जगत् ॥ ४८ ॥

टीका—यमिति ॥ हे शिष्य, (यमीश्वराणां परमं महेश्वरं) कहिये जिसकूं ब्रह्मादि जो जगत्के ईश्वर हैं तिनकाभी परम महा ईश्वर वेद कथन करे है ॥ तथा

श्वेताश्वतरउपनिषत्में लिखा है "तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ॥ पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्" अर्थ—जो परमात्मादेव ब्रह्मादि सर्व ईश्वरोंका परम ईश्वर है और अग्नि आदि देवतायोंकाभी परम दैवत है तथा कश्यप दक्षादि प्रजापतियोंकाभी पति है और चतुर्दश भुवनोंका अधिपति और सर्वकरके पूजनीय है तिस देवकूं हम ऋषिलोक जानते हैं इति ॥ तथा (उद्यतं वज्रमपि) कहिये हे शिष्य, जिस परमात्माकूं वेदविषे उद्यत वज्रके समान कथन किया है तथा यजुर्वेदकी कठउपनिषत्में कहा है "महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवंति" अर्थ—सो परमात्मा सर्व चराचर जगत्को भयका हेतु अर्थात् दंड देनेहारा है और सर्वदाहि शिरपर स्थित भये भयानक वज्रकीन्यांई है जो पुरुष तिसकूं जानते हैं सो मोक्षकूं प्राप्त होते हैं इति ॥ सो (भयेन तस्य) कहिये हे शिष्य तिस परमात्माके भयकरकेहि (अखिलं) कहिये यह सूर्यचन्द्रादिकोंसें लेकर सर्व चराचर जगत् कांपता है जैसे इस लोकमें प्रत्यक्ष (राज्ञोऽनुचरादिकं) कहिये राजाके भय करके सर्व अनुचरादि लोक सर्वदा कांपते हैं ॥ यह वार्ता

यजुर्वेदकी तैत्तिरीय उपनिषत्‌मेंभी लिखी है "भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः, भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पंचमः" अर्थ—इस परमात्माके भयकरके आकाशमें वायु चलता है और भयकरकेहि सूर्यउदय होवे है तथा भयकरकेहि अग्नि ज्वलता और भयकरके इन्द्र वर्षा करे है तथा भयकरके इनमें पांचवा मृत्यु प्राणियोंके मारनेको धावता है इति ॥ तथा बृहदारण्यक उपनिषत्‌मेंभी लिखा है "एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः" अर्थ—हे गार्गि, इस अक्षरपरमात्माकेहि शासनाविषे स्थित भये सूर्य और चन्द्रमा आकाशविषे भ्रमण करते हैं इति ॥ ४८ ॥ इस प्रकारसें श्रुतिसंमत यथार्थ उत्तर श्रवणकरके अब पुनः शिष्य प्रश्न करे है ॥

जडानि कर्माणि पृथक् पृथग्जनैः
कृतानि चित्राणि सदा समंततः ॥
विबुद्ध्य कालेन तु कोऽखिलार्थवित्
फलं दयालुर्भगवन् प्रयच्छति ॥ ४९ ॥

टीका—जडानीति ॥ हे भगवन्, इस ब्रह्मांडांतर्गत दैत्य देव मनुष्य नाग पशु पक्षी आदि जो जीव हैं सो सर्वहि (पृथक् पृथक्) कहिये परस्पर भिन्न

भिन्न कर्म करते हैं और (चित्राणि) कहिये तिनमें एक एक जीवके नानाप्रकारके विचित्र कर्म होवे हैं और सो सर्वहि कर्म (जडानि) कहिये जड हैं अर्थात् स्वतः किसी फलके देनेमें समर्थ नहि होते हैं ॥ यातें सो ऐसा कौन (अखिलार्थवित्) कहिये भूत भविष्यत् वर्तमानके सर्व पदार्थोंके अखंडित जाननेहारा और दयालु पुरुष है कि जो सर्वदाहि (समंततः) कहिये सर्व तरफसें तिन सर्व जीवोंके कर्मोंकूं सम्यक् प्रकारसें भिन्न भिन्न जानकरके (कालेन) कहिये बहुकाल पायकरके जन्मजन्मांतरोंविषे तथा स्वर्गनरकादि देशांतरोंमें भिन्न भिन्न यथायोग्य जीवोंकूं तिन कर्मोंका सुखदुःखादिरूप फल देवे है सो कृपाकरके मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ४९ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका कर्मविषयक प्रश्न श्रवणकरके अब गुरु तिसका उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

येनेश्यते सर्वमिहांतरात्मना
लोकेश्वरा यस्य निदेशकारिणः ॥
तेनाखिलं कर्मफलं प्रसूयते
वर्षांबुना सस्यमिवाविरोधतः ॥ ५० ॥

टीका—येनेति ॥ हे शिष्य, (येनेश्यते) कहिये जो परमात्मा इस जगत्गत चराचर भूतप्राणियोंके अंतर स्थित भया अंतर्यामिरूपसें प्रेरणा करे है ॥ यह वार्ता बृहदारण्यकउपनिषत्मेंभी कथन करी है "यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्योंऽतरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यंतरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः" अर्थ—याज्ञवल्क्यमुनि कहे है हे उद्दालक, जो परमात्मा सर्व चराचर भूतोंमें स्थित भया सर्व भूतोंके अंतर है और जिसकूं सर्वभूत नहि जानते हैं और जिसका सर्व भूत शरीर हैं और जो सर्व भूतोंकूं अंतरसें प्रेरणा करे है सोई तुमारा पूछा हुया नित्य मुक्तस्वरूप अंतर्यामी परमात्मा है इति ॥ तथा गीताके अठारवे अध्यायमें श्रीकृष्णजीनेभी कहा है "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" अर्थ—हे अर्जुन, सर्व भूतप्राणियोंके हृदयकमलमें ईश्वर स्थित होय रहा है इति ॥ सो हे शिष्य, इस प्रकारका जो अंतर्यामी सर्वज्ञ ईश्वर है (तेनाखिलं कर्मफलं प्रसूयते) कहिये सोई सर्व जीवोंकूं कर्मोंका फल भिन्न भिन्न उत्पन्न करे है अर्थात् देवे है यह वार्ता बृहदारण्यकउपनिषत्में कथन करी है

"रातेर्दातुः परायणं" अर्थ—सो परमात्माहि धनके दान करनेहारे पुरुषोंका परायण है अर्थात् सोई तिनके प्रति दानादिकर्मोंका फल देवे है इति ॥ तथा ईशावास्यउपनिषत्‌मेंभी कहा है "याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः" अर्थ—सो परमात्मा निरंतरहि अनेक वर्षोंसें यथायोग्य कर्मोंके फलरूप अर्थोंकी व्यवस्था करे है इति ॥ और जो केचित् जैनमीमांसकादि ऐसा मानते हैं कि ईश्वर कर्मोंके फल-देनेहारा नहि है किंतु कर्महि स्वतन्त्र फल देवे है सो यह वार्ता असंभव है, काहेतें कर्मोंको जड और तत्काल-विनाशिरूप होनेतें कालांतरमें फल देनेकी समर्थता नहि संभवे है ॥ यह वार्ता पुष्पदंतगंधर्वनेभी कही है "क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते" अर्थ—तत्कालविषे विनष्ट भये कर्म विना ईश्वरके आराधन अर्थात् अनुग्रहके कहां फल देवे है अर्थात् कहींभी नहि इति ॥ तथा शारीरकसूत्रोंमें व्यासजीनेभी कहा है "फलमत उपपत्तेः" अर्थ—ईश्वरके सकाशसेंहि सर्व कर्मोंका फल होवे है काहेतें (उपपत्तेः) कहिये ईश्वरमेंहि सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् होनेतें कर्मोंके फलका देनापना संभवे है कर्मोंको जड होनेतें तिनमें नहि

संभवे है इति ॥ और जो इस स्थलमें शिष्य इस प्रकारकी शंका करे कि गरुडपुराणादिकोंमें लिखा है कि पापपुण्य कर्मका फल यमराजा देवे है और यज्ञादिकोंका फल वर्षादिद्वारा इन्द्र देवे है तो तहां गुरु समाधान कहे हैं (लोकेश्वरा यस्य) कहिये हे शिष्य, जिस परमात्माके इन्द्र कुबेर यम वरुणादि जो लोकपाल हैं सो सर्वहि (निदेशकारिणः) कहिये आज्ञाकारी हैं अर्थात् जैसे इस लोकविषे प्रसिद्ध राजाकी आज्ञासें मन्त्री आदि चौरादिकोंकूं दंडादिक देवे हैं तैसेहि परमात्माकी आज्ञानुसारहि यमराजादिक जीवोंकूं कर्मोंका फल देवे हैं स्वतन्त्र नहि यातें मुख्य परमात्माहि कर्मफलका देनेहारा है ॥ शंका ॥ जो उक्त रीतिसें ईश्वरकूंहि कर्मफलका दाता मानोगे तो तिसमें विषमतादि दोषोंकी प्राप्ति होवेगी काहेतें किसी जीवकूं देवता बनाय देना किसीकूं मनुष्य किसीकूं सर्प किसीकूं धनी किसीकूं दरिद्री इत्यादि कार्य विषमतासेंविना कैसे संभवे हैं और जो ईश्वरमें भी विषमता भई तो तिसका ईश्वरपनाहि नहि संभवेगा ॥ इस प्रकारकी शिष्यकी शंका होनेतें गुरु समाधान कहे हैं "वर्षांबुना सस्यमिवाविरोधतः" कहिये हे शिष्य,

ईश्वरविषे विषमतादि दोष नहि संभवे हैं काहेतें ईश्वर तो वर्षाके जलकी न्यांई है जैसे वर्षाका जल सर्व क्षेत्रोंविषे बराबर पडे है परंतु जिस जिस क्षेत्रविषे जो जो यव गेहूं तंदुलादि वस्तु बोया हुया होवे है सोई सोई तिसमें उत्पन्न होवे है यातें तिस वर्षाके जलमें कोई विषमतादि दोष नहि संभवे है तैसेहि ईश्वरभी कर्मोंके फल देनेमें साधारण निमित्त होवे है आगे जिस जिस जीवका जैसा जैसा कर्म होवे है तैसा तैसाहि तिसकूं फल प्राप्त होवे है अपनी तरफसें ईश्वर कुछ नूतन फल नहि देवे है ॥ यह वार्ता शारीरकसूत्रोंमें व्यासजीनेंभी कथन करी है "वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति" अर्थ—ईश्वरमें विषमता और निर्दयता आदि दोष नहि संभवे हैं काहेतें (सापेक्षत्वात्) कहिये जीवोंके कर्मोंकी अपेक्षा करकेहि ईश्वर शुभाशुभ फल देवे है इसी वार्ताकूं श्रुतिभी दिखलाती है अर्थात् कथन करती है इति ॥ ५० ॥ इस प्रकारसें गुरुके मुखसें युक्तियुक्त उत्तर श्रवण करके अब शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

दिवाकरो दाहकरो निशाकर-
स्तडिद्गणश्चोडुगणस्तथानिशम् ॥
विभाति कस्यामितदीप्तिदीपितो
ब्रवीतु मे संशयशैलदेवराट् ॥ ५१ ॥

टीका—दिवाकर इति ॥ हे (संशयशैलदेवराट्) कहिये सर्व संशयरूप पर्वतोंके छेदन करनेमें इन्द्रके समान गुरो, दिवाकर जो सूर्य है और दाहकर जो अग्नि है तथा निशाकर जो चंद्रमा है और तडिद्गण जो बिजुलियोंका समूह है और उडुगण जो तारा-गण है सो यह सर्वहि (कस्यामितदीप्तिदीपितो) कहिये ऐसा कौन पुरुष अमित प्रकाशकरके युक्त है कि जिसके प्रकाशकरके सर्वदाहि प्रकाशवान् होय रहे हैं सो कृपाकरके मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ५१ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका श्रुतिसंमत उत्तर कथन करे हैं ॥

न यत्र सूर्यो न निशाकरस्तथा
न चापि विद्युज्ज्वलनः प्रकाशते ॥
श्रुतौ स्वयंज्योतिरुदीरितश्च यो
विभाति तस्याखिलमेव तेजसा ॥ ५२ ॥

टीका—न यत्रेति ॥ हे शिष्य, जिसकेविषे (सूर्यो) कहिये इस सर्व ब्रह्मांडके प्रकाश करनेहारा सूर्य प्रकाश नहि कर सकै है और (न निशाकरः) कहिये रात्रिके प्रकाश करनेहारा जो चन्द्रमा है सोभी प्रकाश नहि कर सकै है तथा विद्युत् जो विजुली है सोभी प्रकाश नहि करसकती और ज्वलन जो अग्नि देवता है सोभी प्रकाश करनेमें समर्थ नहि होवे है ॥ तथा (श्रुतौ स्वयंज्योतिरुदीरितश्च) कहिये हे शिष्य, "तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होंपासतेऽमृतं" "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति" इत्यादि वेदके वाक्योंविषे जो स्वयंज्योतिस्वरूप प्रतिपादन किया है तिसहि परमात्माके (तेजसा) कहिये चेतनमय प्रकाशकरके यह सूर्य चन्द्रमादि सर्व प्रकाशवान् हो रहे हैं ॥ यह वार्ता यजुर्वेदकी कठउपनिषत्मेंभी कथन करी है "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः। तमेव भांतमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" अर्थ—तिस परमात्माविषे सूर्य नहि प्रकाशता है और चन्द्रमाभी नहि प्रका-

---

१ यद्यपि इस बृहदारण्यकके वाक्यमें तहां जीवात्माका प्रसंग है तथापि अभेदाभिप्रायसें यहां परमात्माका कथन जानना.

शता है तथा तारागणभी नहि प्रकाशते हैं और विजुलियांभी नहि प्रकाशती हैं यह अग्नि तो कैसेहि प्रकाश सके है किंतु तिस परमात्माके प्रकाशते हुयेके पीछेहि यह सूर्य चन्द्रमादि प्रकाशते हैं और तिसहिके प्रकाशकरके यह सर्व जगत् प्रकाशमान हो रहा है इति ॥ तथा गीताके पंद्रवें अध्यायमेंभी कहा है "यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ॥ यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्" अर्थ—हे अर्जुन, जो तेज सूर्यमंडलमें स्थित भया सर्व जगत्कूं प्रकाशे है और जो तेज चन्द्रमामें स्थित भया प्रकाशे है और जो तेज अग्निमें स्थित भया प्रकाशे है सो तूं सर्व तेज मेराहि जान इति ॥ ५२ ॥ इस प्रकारसें सूर्य चन्द्रमा आदिकोंकूं नियमसें चलाना और सर्व जीवोंकूं कर्मोंके फलका देना इत्यादि कार्योंसे परमात्माकूंहि जगत्की स्थितिका कारण श्रवण करके अब शिष्य जगत्के प्रलयविषयक प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

सदेवनागासुरसिद्धमानवं
जगत्समग्रं प्रलये लयोन्मुखम् ॥

विलीयते कस्य तनावनाशिनो
जगत्पतेर्ब्रूहि विपश्चितांपते ॥ ५३ ॥

टीका—सदेवेति ॥ हे (विपश्चितांपते) कहिये सर्व विद्वानोंके पति अर्थात् श्रेष्ठ गुरो, देवता नाग दैत्य सिद्ध मनुष्यादिक चराचर भूत प्राणियोंके सहित (जगत्समग्रं) कहिये यह जो चतुर्दशभुवनात्मक संपूर्ण जगत् है सो (प्रलये) कहिये प्रलयकालमें नाशके सन्मुख भया ऐसा कौन अविनाशी और सर्व जगत्का पति पुरुष है कि जिसके शरीरविषे (विलीयते) कहिये जायकरके लीन हो जावे है सो कृपाकरके मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ५३ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका उत्तर कहे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

यस्योदरेऽनंततनोर्महात्मनो
ब्रह्मांडलक्षाणि परिस्फुरंत्यलम् ॥
खद्योतका भांति यथा नभोंऽगणे
तस्मिन्निदं याति लयं लयेऽखिलम् ॥५४॥

टीका—यस्येति ॥ हे शिष्य, (अनंततनोः) कहिये जिस परमात्माका अनंत कहिये अंतसें रहित शरीर

अर्थात् स्वरूप है ॥ तथा यजुर्वेदकी तैत्तिरीय-उपनिषत्‌मेंभी कहा है "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" अर्थ—सो परमात्मा सत्यरूप और ज्ञानरूप तथा अनंतस्वरूप है इति ॥ तथा (महात्मनः) कहिये हे शिष्य, जो परमात्मा सर्वसें बडा है यह वार्ताभी कठ-उपनिषत्‌में कही है "अणोरणीयान् महतो महीयान्" अर्थ—सो परमात्मा परमाणु आदि अत्यंत सूक्ष्मों-सेंभी सूक्ष्म है और आकाशादि बडोंसेंभी बडा है इति ॥ तथा हे शिष्य, जिसके उदरविषे अर्थात् अभ्यंतर (ब्रह्मांडलक्षाणि) कहिये लाखोंहि ब्रह्मांड इस प्रकारसें स्फुरण होवे हैं कि जैसे आकाशविषे रात्रिमें अनेकहि खद्योत स्फुरण होते हैं ॥ तथा यह वार्ता योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणमेंभी कथन करी है "ब्रह्मांडानां तादृशानां दूरे दूरे पुनः पुनः ॥ मिथो लक्षाणि लक्षाणि क्वचंत्युपरमंति च" अर्थ—हे रामचन्द्र, तिस चिदाकाशरूप परमात्माविषे किंचित् दूरदूरपर लाखोंहि तिस प्रकारके ब्रह्मांड स्फुरण होते हैं और नाशभी पाते हैं इति ॥ तथा व्यासजीनेंभी योगभाष्यमें लिखा है "पंचाशत् कोटिपरिसंख्या-तास्तदेतत्सर्वं सुप्रतिष्ठितसंस्थानमंडमध्ये व्यूढं अंडं च

प्रधानस्याणुरवयवो यथाकाशे खद्योत इति" अर्थ— जंबुआदि सप्तद्वीप और लवणादि सप्तसमुद्र यह सर्व मिलकरके पचास कोटि योजन पृथिवीमंडलका विस्तार है सो यह नानाप्रकारकी रचनायुक्त सर्व विस्तार ब्रह्मांडके मध्यमें स्थित है सो सर्व ब्रह्माण्ड मायाके किसीएक अवयव अर्थात् अंशमें स्थित है जैसे कि आकाशके किसी अंशमें खद्योत उडता है इति ॥ सो इस प्रकारकी मायाभी जिस परमात्माके किसी एक अंशमें रहती है तो तिसके बडेपनेकी तो क्याहि वार्ता कथन करनी है ॥ सो हे शिष्य, ऐसा जो महान् परमात्मा देव है (तस्मिन्निदं याति लयं) कहिये तिसकेविषेहि यह सर्व चराचर जगत् प्रलयकालमें लीन होवे है ॥ तथा यह वार्ता तैत्तिरीय उपनिषत्-मेंभी कथन करी है "यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंतीति तद्ब्रह्म" अर्थ—जिससें यह सर्व भूतप्राणी उत्पन्न होवे हैं और जिसमें उत्पन्न भये सर्वदा स्थित रहते हैं और जिसविषे पुनः प्रलयकालमें लीन होते हैं सोई ब्रह्म है इति ॥ ५४ ॥ इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसें परमा-त्माकूं जगत्की उत्पत्ति स्थिति और प्रलयका कारण

निरूपण करके अब तिस परमात्माके आराधन करनेसेंहि मोक्षपदकी प्राप्ति होवे है यह वार्ता तीन श्लोकोंकरके वर्णन करे हैं तहां शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

इहास्ति देवः खलु कस्तु पूज्यतां
गतः कथं तस्य भवेच्च पूजनम् ॥
सुपूजितेनापि च तेन किं फलं
भवेदिहामुत्र वदाशु मे विभो ॥ ५५ ॥

टीका—इहेति ॥ हे (विभो) कहिये आत्मस्वरूपसें सर्वत्र व्यापकरूप गुरो, इस सर्व जगत्‌में सर्व देवतायोंसें उत्कृष्ट पूजनेयोग्य कौन देव है और 'कथं तस्य भवेच्च पूजनं' कहिये तिस देवका पूजन किसप्रकारसे होवे है तथा तिसके विधिपूर्वक पूजन करनेसें (किं फलं) कहिये इस लोक और परलोकविषे किस फलकी प्राप्ति होवे है सो यह सर्व वार्ता मेरेकूं कृपाकरके कथन करो इति ॥ ५५ ॥ इस प्रकारसें शिष्यके देवपूजनविषयक तीन प्रश्न श्रवणकरके अब गुरु तिनका दो श्लोकोंकरके उत्तर कहे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

य: सर्वगोऽव्यक्तवपुः स्वसंस्थिति-
र्यन्मूर्तयो ब्रह्ममहेशमाधवाः ॥
सर्वेश्वरं वेदवचांसि यं जगु-
र्देवाधिदेवं तमवेहि सन्मते ॥ ८६ ॥

टीका—य इति ॥ हे शिष्य, जो परमात्मा (सर्वगः) कहिये सर्व जगत्‌विषे व्यापक है ॥ तथा यह वार्ता कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषत्‌में कथन करी है "यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश" अर्थ—जो परमात्मा देव अग्निमें है और जो जलमें है तथा जो देव इस चराचर विश्व और चतुर्दशभुवनोंमें प्रवेश किये हुये है इति तथा हे शिष्य, जो परमात्मा (अव्यक्तवपुः) कहिये अव्यक्तस्वरूप है अर्थात् स्थूल शरीरादि व्यक्तिसें रहित है ॥ तथा मुंडकउपनिषत्‌मेंभी लिखा है "दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यंतरो ह्यजः" अर्थ—सो परमात्मारूप पुरुष दिव्य और अमूर्त कहिये मूर्तिसें रहित है तथा सर्व जगत्‌के बाह्य और अंतर व्यापक और अजन्मा है इति ॥ तथा जो परमात्मा (स्वसंस्थितिः) कहिये

सर्वदाहि अपने स्वरूपविषे स्थित रहता है अर्थात् किसी दूसरेके आश्रय नहि है। यह वार्ता छांदोग्य-उपनिषत्‌मेंभी निरूपण करी है "स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नीति" अर्थ—नारदमुनिने सनत्कुमारसें प्रश्न किया कि हे भगवन्, सो परमात्मा किसकेविषे प्रतिष्ठित है तो सनत्कुमारने कहा सो सर्वदा अपनी महिमा अर्थात् स्वभावमेंहि स्थित रहता है दूसरे किसीमें नहि इति। तथा (यन्मूर्तयो) कहिये जिसकी ब्रह्मा और महादेव तथा विष्णु यह तीन मुख्य मूर्तियां हैं यहां ब्रह्मा महादेव और विष्णु यह सूर्य शक्ति और गणेश इनकेभी उपलक्षण हैं काहेतें सूर्यादिकोंकीभी वेदविषे ईश्वरता कथन करी है॥ यद्यपि परमात्मा स्वभावसें सर्व मूर्तियोंसें रहित है तथापि उपासकलोकोंकी अनुग्रहके अर्थ तिसकी महा-देवादि व्यक्तियोंका स्वेच्छया निर्माण होवे है॥ तथा कैवल्यउपनिषत्‌मेंभी कहा है "स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्" अर्थ—सोई ब्रह्मा है सोई शिव है सोई इन्द्र है सोई परमात्मा अविनाशी परम स्वतंत्र है इति॥ तथा हे शिष्य, 'सर्वेश्वरं वेद-वचांसि यं जगुः' कहिये जिस परमात्माकूं वेदके

वाक्य सर्व जगत्का ईश्वर कथन करते हैं। तथा यजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषत्में कहा है "तमीश्वराणां परमं महेश्वरं" अर्थ—सो परमात्मा ब्रह्मादिक ईश्वरोंकाभी महान् ईश्वर है इति ॥ सो हे (सन्मते) कहिये श्रेष्ठ बुद्धिवाले शिष्य, इन उक्तविशेषणोंकरके युक्त जो परमात्मा है तिसहिकूं तूं (देवाधिदेवं) कहिये पूजनेयोग्य सर्व देवतायोंकाभी परम देव जान ॥ तथा यह वार्ताभी श्वेताश्वतरउपनिषत्मेंहि कथन करी है "तं देवतानां परमं च दैवतं" अर्थ—सो परमात्मा सर्व देवतायोंका परम दैवत है इति ॥ ५६ ॥ इस प्रकारसें शिष्यके प्रथम प्रश्नका उत्तर कथन करके अब तिस देवका पूजन किस प्रकारसें होवे है और तिसके पूजनेसें किस फलकी प्राप्ति होवे है यह जो शिष्यके दो प्रश्न हैं तिनका गुरु उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

न पुष्पमालाभिरसौ न चन्दनै-
र्न धूपदीपादिनिवेदनैरपि ॥
प्रयाति तोषं तु मनोऽम्बुजार्पणात्
ततोऽचिरं मोक्षफलं प्रयच्छति ॥ ५७ ॥

टीका—न पुष्पमालाभिरिति ॥ हे शिष्य, सो परमात्मा देव (पुष्पमालाभिः) कहिये नाना-प्रकारके पुष्पोंकी मालाओंके अर्पण करनेतें तथा (न चन्दनैः) कहिये अनेक प्रकारके सुगंधियुक्त चंदनोंके अर्पण करनेतें तथा (न धूपदीपादि) कहिये नानाप्रकारके धूप और दीपादिकोंके निवे-दन करनेतेंभी (तोषं) कहिये संतोष अर्थात् प्रसन्नताकूं प्राप्त नहि होवे है ॥ किंतु (मनोऽबुजार्प-णात्) कहिये हे शिष्य, रागद्वेषादिमलकरके रहित स्वच्छ और विवेकरूप सूर्यके प्रकाशसें खिलाहुया तथा प्रेमरूप सुगंधिकरके युक्त जो अपना चित्तरूप एक कमल है तिसके विधिपूर्वक अर्पण करनेसें सो परमात्मादेव शीघ्रहि प्रसन्नताकूं प्राप्त होवे है ॥ यातें हे शिष्य, तूं चित्तरूप पुष्पकरकेहि तिस देवका पूजन कर ॥ तथा श्रीशंकराचार्यनेभी कहा है "गभीरे कासारे विशति विजने घोरविपिने विशाले शैले च भ्रमति कुसुमार्थं जडमतिः । समर्प्यैकं चेतः सरसिजमुमानाथ भवते सुखेनैव स्थातुं जन इह न जानाति किमहो" अर्थ—हे उमानाथ ईश्वर, आपकूं समर्पण करनेयोग्य पुष्पोंके लेनेके लिये अविवेकी

पुरुष निर्जन वन और गहन तालावविषेभी प्रवेश करते हैं तथा विकट पर्वतपरभी आरोहण करते हैं परंतु अपने समीपहि स्थित जो चित्तरूप सुंदर कमल है तिसकूं अनायाससेंहि आपकेविषे अर्पण करके सुखसें स्थित नहि होते हैं यह बडे आश्चर्यकी वार्ता है इति ॥ तथा योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणमें वसिष्ठमुनिकेप्रति महादेवजीनेभी कहाहै "ध्यानोपहार एवात्मा ध्यानमस्य महार्चनम् । विना तेनेतरेणायमात्मा लभ्यत एव नो ॥" अर्थ—हे वसिष्ठ, इस परमात्मादेवका ध्यानहि परम उपहार कहिये पूजनकी सामग्री है और ध्यानहि इसका परम पूजन है काहेतें ध्यानसें विना इस आत्माकी प्राप्ति नहि होवे है इति ॥ सो हे शिष्य, इसप्रकार चित्तरूप पुष्पके अर्पणरूप पूजनसें प्रसन्न भया सो परमात्मादेव पूजन करनेहारे मुमुक्षु पुरुषकूं (ततोऽचिरं मोक्षफलं प्रयच्छति) कहिये पश्चात् शीघ्रहि जन्ममरणरूप संसारबंधनके नाशद्वारा कैवल्यमोक्षपदकी प्राप्तिरूप जो फल है तिसकूं देवे है ॥ तथा यह वार्ता भगवद्गीतामें श्रीकृष्णजीनेभी कथन करी है "तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् । ददामि

बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते" अर्थ—हे अर्जुन, जो पुरुष नित्यहि युक्त भये प्रीतिपूर्वक मेरा आराधन करते हैं तिनकूं मैं तिस ज्ञानकूं देताहुं कि जिस-करके सो शीघ्रहि मेरे स्वरूपविषे आय मिलते हैं इति ॥ ५७ ॥ इसप्रकारसें परमात्मा देवकी सर्व देवतायोंसें उत्कृष्टता और तिसके पूजनका विधान और कैवल्यमोक्षरूप फलकूं श्रवणकरके अतीव उत्कंठाकूं प्राप्त भया शिष्य अब तिस देवका निवासस्थान जाननेके लिये प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

स्थलं निवासस्य गुरो क्व विद्यते
सदैव देवस्य कथं च गम्यते ॥
कथं भवेत्तस्य च दर्शनं द्रुतं
ब्रवीतु मे तत्त्वदृशां मणिर्भवान् ॥ ५८ ॥

टीका—स्थलमिति । हे (तत्त्वदृशां मणिः) कहिये सर्व तत्त्ववेत्ता पुरुषोंमें मणिकी न्यांई श्रेष्ठ गुरो, अपने जो कहा कि तिस परमात्मादेवका पूजन करना चाहिये सो हे भगवन्, (स्थलं निवासस्य) कहिये तिस देवके सर्वदा काल निवास करनेका

कौनसा स्थान है कि जहां मैं जायकरके पूजन करूं तथा (कथं च गम्यते) कहिये तिस स्थानविषे किस प्रकारसें पहुंचना होवे है तथा स्थानपर पहुंचकरकेभी पुनः तिस देवका दर्शन किस प्रकारसें होवे है सो यह सर्व वार्ता शीघ्रहि मेरेप्रति कृपाकरके कथन करो इति ॥ ५८ ॥ इसप्रकारसें शिष्यके तीन प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिन तीनोंका एकहि श्लोककरके उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

तस्य स्थलं भूमिगतं न चांबरे
पातालगं वापि सदा हृदंबुजे ॥
जानीहि तद्ध्यासमुपेत्य चेतसा
पश्यंति तं दिव्यदृशस्तु योगिनः ॥५९॥

टीका—तस्येति ॥ हे शिष्य, (तस्य) कहिये तिस देवके रहनेका स्थान (भूमिगतं न) कहिये नानाप्रकारके पर्वत नदी समुद्रादिकोंकरके शोभायमान जो यह पृथिवीमंडल है तिसविषे नहि है और (अंबरे) कहिये जो ऊपर आकाशविषे स्वर्ग जन तपआदिक लोक हैं तिनविषेभी नहि है तथा

पातालगं कहिये पृथिवीके नीचे जो अतल वितल तला-तलादिलोक हैं तिनमेंभी नहि है ॥ किंतु (सदा हृदंबुजे) कहिये हे शिष्य, तिस देवका सर्वदा तुम अपने हृदयकमलमेंहि निवास जान तथा यह वार्ता यजुर्वेदके मन्त्रभागमेंभी कथन करी है "सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्" अर्थ—जिस परमात्मारूप पुरुषके अनेकहि शिर और अनेकहि चक्षु और अनेकहि पाद हैं सो अपने स्वरूपसें सर्व पृथिवी अर्थात् ब्रह्मांडकूं सर्वतरफसें आच्छादितकरके पश्चात् नाभिसें दश अंगुल ऊपर जो हृदयकमल है तिसमें स्थित होय रहा है ॥ तथा गीताके पंदरवें अध्यायमेंभी कहा है "सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च" अर्थ—हे अर्जुन, मैं सर्वभूतप्राणियोंके हृदयमें प्रविष्ट भया हुं और मेरेकरकेहि सर्व प्राणियोंकुं सर्वपदार्थोंका स्मरण, ज्ञान और तर्कण होवेहै इति ॥ यहां यह रहस्य है ॥ यद्यपि सामान्यसें सो परमात्मादेव उक्त आकाश पातालादिकोंमेंभी सर्वत्र परिपूर्ण है यह वार्ता पूर्वहि कथन करि आये हैं तथापि विशेषकरके तिसकी हृदयकमलमेंहि चेतनरूपसें उपलब्धि होवे है जैसे

सर्वव्यापक सूर्यके प्रकाशकी विशेषकरके दर्पणमें उपलब्धि होवे है ॥ यातें गुरुने यहां तिस परमात्माका हृदयकमलहि निवासस्थान शिष्यके प्रति कथन किया है इस प्रकारसें प्रथम प्रश्नका उत्तर कहकरके अब तिस स्थानमें किस प्रकारसें पहुंचना होवे है यह जो शिष्यका द्वितीय प्रश्न है तिसका गुरु उत्तर कथन करे हैं (उपेत्य चेतसा) कहिये हे शिष्य, तिस परमात्मादेवके स्थानविषे चित्तवृत्तिरूप पादोंकरके पहुंचना होवे है दूसरे किसी उपायकरके नहि काहेतें यजुर्वेदकी कठउपनिषत्में लिखा है कि "मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन" अर्थ— इस आत्माविषे यह नानापणा कोई नहि है यातें केवल मनकरकेहि इसकूं प्राप्त होनां योग्य है इति इस प्रकारसें द्वितीय प्रश्नका उत्तर कहकरके अब तिस देवका दर्शन किस प्रकारसें होवे है यह जो शिष्यका प्रश्न है तिसका उत्तर कहे हैं (दिव्यदृशस्तु योगिनः) कहिये हे शिष्य, उक्त प्रकारसें चित्तवृत्तिरूप पादकरके तहां पहुंचकर तिस परमात्मादेवकूं दिव्यदृष्टिवाले जो योगीजन हैं सो (पश्यंति) कहिये समाधिकालमें देखते हैं ॥ यद्यपि परमात्माकों

रूपादिकोंसें रहित होनेतें तिसका देखना असंभव है तथापि इस वार्तामें अनेक श्रुतिस्मृतियोंके प्रमाण होनेतें अवश्य समाधिकालमें अपने हृदयकमलविषे ज्योतिरूपसें योगीलोक तिस परमात्माका दर्शन करते हैं ॥ तथा अथर्ववेदकी मुंडकउपनिषत्में कहा है "ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः" अर्थ—तिसके अनंतर ध्यान करताहुया योगीपुरुष तिस परमात्माकूं देखे है इति ॥ तथा कठउपनिषतमेंभी कहा है "कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्" अर्थ—कोईएक धैर्यवान् पुरुष सर्व इन्द्रियोंकूं निरोध करके मोक्षपदकी इच्छावान् भया समाधिद्वारा तिस प्रत्यगात्माकूं देखे है इति ॥ तथा शारीरकसूत्रोंमें व्यासजीनेंभी कहा है "अपि च संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्" अर्थ—समाधिकालमें योगिपुरुष तिस परमात्माका हृदयाकाशमें दर्शन करते हैं काहेतें इस वार्तामें अनेक श्रुतिस्मृतियोंके प्रमाण हैं इति ॥ तथा महाभारतमें भीष्मस्तवराजविषे भी कहा है "यं विनिद्रा जितश्वासाः संतुष्टाः संयतेन्द्रियाः । ज्योतिः पश्यंति युंजानास्तस्मै योगात्मने नमः" अर्थ—जिसकूं निद्रासें रहित और प्राणोंके जय करनेहारे तथा संतुष्टचित्त

और जितेन्द्रिय योगीलोक समाधिकालमें ज्योतिरूपसें देखते हैं तिस योगात्मारूप भगवान्कूं मेरी नमस्कार होवो इति ॥ अथवा योगी शब्दकरके यहां आत्मज्ञानीयोंका ग्रहण जानना काहेतें सोभी शरीर इन्द्रिय बुद्धि आदिक सर्व प्रपंचका बाधकरके परमात्माविषे जुडते हैं अर्थात् एकीभावकूं प्राप्त होते हैं यातें सोभी योगी कहिये है सो हृदयाकाशमें स्थित बुद्धिवृत्तिविषे प्रतिबिंबित जो चेतनरूप परमात्मा है तिसकूं देखते हैं अर्थात् (तत्त्वमसि) इत्यादि महावाक्योंके विचारजन्य वृत्तिव्याप्ति करकरके तिसका साक्षात् अनुभव करते हैं इति ॥ ५९ ॥ इस प्रकार पूर्वोक्तरीतिसें यहांपर्यंत जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलयादिद्वारा तत् पद जो ईश्वर है तिसका तटस्थलक्षणोंकरके निरूपण किया अब द्वादश श्लोकोंकरके त्वंपद जो जीव है तिसका विवेचन करे हैं ॥ तहां पूर्वोक्तप्रकारसें बाह्यविषयक प्रश्नोंका समाधान श्रवण करके अब शिष्य अध्यात्मविषयक प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

अहं शरीरं किमुतेन्द्रियाणि वा
मनोऽथवा प्राणगणोऽथवा मतिः ॥

अथो किमेषां तु समुच्चयोऽस्मि किं
ततः पृथग्वात्मविदां शिरोमणे ॥ ६० ॥

टीका—अहमिति ॥ हे (आत्मविदां शिरोमणे) कहिये सर्व आत्मतत्त्वके जाननेहारे पुरुषोंमें शिरोमणिरूप गुरो, यह जो अन्नमयकोशरूप स्थूलशरीर है सो मैं हुं किंवा (इन्द्रियाणि) कहिये श्रोत्र चक्षु आदिक जो दश इन्द्रिय हैं सो मैं हुं अथवा संकल्पविकल्पात्मक जो मन है सो मैं हुं किंवा प्राण अपानादि जो प्राणोंका समूह है सो मैं हुं अथवा (मतिः) कहिये निश्चयात्मक जो बुद्धि है सो मै हुं किंवा इन सर्व शरीर इन्द्रियादिकोंका जो (समुच्चयः) कहिये समूह है सो मैं हुं अथवा (ततः पृथक्) कहिये तिन सर्वसें कोई भिन्न वस्तु मैं हुं ॥ सो यह वार्ता कृपा करके मेरे प्रति कथन करो इति ॥ ६० ॥

इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिस प्रश्नके प्रथम षट् विकल्पोंका निषेध करतेहुये अंतके विकल्पकूं अंगीकार करके उत्तर कहे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

शरीरमेतन्न तथेन्द्रियाण्यपि
मनोऽपि नो प्राणगणोऽपि नो मतिः ॥

न चापि धीमन्नसि तत्समुच्चय-
स्ततोऽन्यमात्मानमवेहि साक्षिणम् ॥८१॥

टीका—शरीरमिति ॥ हे शिष्य, (शरीरमेतन्न) कहिये यह जो अन्नमयकोशरूप स्थूलशरीर है सो तुं नहि काहेतें यह नियम है कि जैसा कारण होवे है तैसाहि कार्य होवे है सो मातापिताके रजोवीर्य और अन्नदुग्धादि जड पदार्थोंका कार्य होनेतें यह शरीरभी स्वतः जड हि है इसलिये यह तेरा स्वरूप नहि संभवे है ॥ किंच यह शरीर जन्मसें प्रथम नहि था और पुनः मरनेके अनंतर नहि रहता याने अनित्य है और जो यह शरीर हि तेरा स्वरूप होता तो इस जन्मसें प्रथम तेरा अभाव होनेतें शुभाशुभ कर्मोंका भी अभाव हि होवेगा तो इस जन्ममें जो सुखदुःखका भोग होवे है सो किन कर्मोंका फल है और जो तुं कहे कि सो हि जन्मके कर्मोंका फल है तो यह वार्ता संभवे नहि काहेतें यह वार्ता लोकविषे देखनेमें नहि आवे है कि जो आजहि कर्म किया और आजहि तिसका फल प्राप्त होजावे यद्यपि केचित् अति उग्र कर्मोंका फल इस जन्ममेंभी होवे है तथापि सर्व कर्मोंका नहि तथा कहीं धर्मात्मा पुरुषोंको

क्लेश और पापात्मा पुरुषोंको सुखभोग देखनेमें आवे है जैसे कि पांडव और दुर्योधनादि भये हैं यातें यह सिद्ध होवे है कि सर्व कर्मोंका फल इस जन्ममें नहि होवे हैं किंच सर्व भूतप्राणी मरनेसें अत्यंत भय मानते हैं सो तिनोंने सो मरणकालका दुःख किस कालमें अनुभव कियाथा जो कहे इस हि जन्ममें किया होगा तो सो वार्ता असंभव है काहेतें जो इस जन्ममें मरनेका दुःख अनुभव किया होता तो सो पुनः जीवते हि कैसे रहते ॥ और जो कहे कि दूसरोंके देखनेसें होवे है तो विशेष विचाररहित जो पशु पक्षी कीट पतंगादिक हैं तिनकूं नहि होना चाहिये और होवे है यातें पीछले जन्मोंविषे तिसका अनुभव किया है यह सिद्ध होवे है ॥ किंच जन्मता हि बालक माताके स्तनको धावता है तो उसको किसने बताया है कि इसमें दुग्ध है और सो तेरी क्षुधाकी शांति करनेहारा है ॥ किंच मरनेके अनंतर इस शरीरका अभाव होवे हैं तो इस लोकविषे किये जो शुभाशुभ कर्म तिनका विनाहि भोगसें नाश होजावेगा तो परलोकसंबंधी फलवाले यज्ञादिकर्मोंके विधान करनेहारे जो वेद शास्त्र हैं सो सर्वहि व्यर्थ

होजावेंगे यातें हे शिष्य, यह स्थूल शरीर तुं नहि तथा सामवेदकी छांदोग्यउपनिषत्‌मेंभी लिखा है "जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते" अर्थ—जीवसें रहित भया यह स्थूलशरीरहि मर जावे है जीव नहि मरता इति ।। इससेंभी स्थूल शरीरसें जीव भिन्न निश्चय होवे है ।। तथा (इन्द्रियाण्यपि न) कहिये हे शिष्य, यह जो शब्दादि विषयोंके ग्रहण करनेहारी चक्षु श्रोत्रादि पांच ज्ञानेन्द्रिय और हस्त-पादादि कर्मेन्द्रिय हैं सोभी तुं नहि काहेतें पंच महाभूतोंके सत्त्व और रजोगुणका कार्य होनेतें सोभी शरीरकी न्यांई स्वतः जडरूपहि हैं यातें सो तेरा स्वरूप नहि संभवे है और जो इन्द्रियहि जीवका स्वरूप होता तो जो पुरुष अंधे बहिरे पंगु आदि इन्द्रियोंसें हीन हैं तिनका जीवना किस प्रकारसें होता और सो दूसरे पुरुषोंकी न्याई चलते फिरते खाते पीते व्यवहार करते देखनेमें आते हैं यातें हे शिष्य, दश इन्द्रियभी तुं नहि ।। तथा सामवेदकी छांदोग्य-उपनिषत्‌मेंहि यह प्रसंग लिखा है कि एक कालमें सर्व इन्द्रियां परस्पर विवाद करती भई एक कहे मैं श्रेष्ठ हुं दूसरी कहे मैंहि श्रेष्ठ हुं तो इस वार्ताके

निर्णय करनेके लिये सो सर्व ब्रह्माके पास जाय करके कहती भई हे भगवन्, हमारेमेंसें कौन श्रेष्ठ है तो ब्रह्माने कहा जिसके विना शरीरकी स्थिति नहि रह सके सोई तुमारेमेंसें श्रेष्ठ जानना तो यह वाक्य श्रवण करके तिनमेंसें प्रथम वाचा इन्द्रिय शरीरसें बाहिर निकसकर एक वर्ष पीछे आय करके कहती भई मेरेविना तुम कैसे जीते रहे तो दूसरी इन्द्रियोंने कहा कि जैसे गुंगा पुरुष सर्व खानपानादि व्यवहार करता हुया जीता रहे है तैसे हि हमभी जीते रहे ॥ इसी प्रकारसें चक्षु श्रोत्रादिक सर्व इन्द्रिय शरीरसे निकस निकस करके वर्षवर्षके पीछे आवती भई परंतु सो शरीर नहि पतित भया और जब प्राणोंके सहित जीवात्मा निकसने लगा तो सर्व इन्द्रियां व्याकुल हो जाती भई और शरीर पतित होने लगा तो पीछे तिन सर्व इन्द्रियोंके प्रार्थना करनेसें प्राणके सहित जीवात्माके स्थित होनेतें शरीरकी स्थिति होती भई इति ॥ किंच हे शिष्य, यह मेरे श्रोत्र हैं और यह मेरे नेत्र हैं और यह मेरे हाथ हैं यह मेरे पाद हैं इस प्रकारसें सर्व इन्द्रियोंकूं भिन्न भिन्न करके तुं जानता है और जो कोई जिस वस्तुकूं जाने है सो अवश्य

तिसतें भिन्न होवे है यातें भी यह दश इन्द्रिय तुं नहि ॥ तथा हे शिष्य, (मनोपि नो) कहिये संकल्प-विकल्पात्मक जो यह चंचल मन है सोभी तुं नहि काहेतें पंचमहाभूतोंके सत्त्व अंशका कार्य होनेतें मनभी स्वतः जडहि है तथा जिस कालमें तमोगुणकी अधिकता होवे है तो तंद्रा भ्रांति निद्रा ग्लानि इत्यादि इस मनकी वृत्तियां होती हैं और जिस कालमें रजो-गुणकी अधिकता होवे है तो भोगकी और ऐश्वर्यकी इच्छा और कर्म करनेमें उत्साह तथा स्त्री आदि विषयोंमें राग इत्यादि मनकी वृत्तियां होवे हैं और जिस कालमें सत्त्वगुणकी अधिकता होवे है तो शांति विराग धर्मरुचि प्रसन्नता इत्यादि मनकी वृत्तियां होवे हैं सो इस प्रकारसें मनको प्रतिक्षण विकारी होनेतें आत्मपणा नहि संभवे है काहेतें अनेक श्रुतिस्मृतियों-विषे आत्माकूं निर्विकार प्रतिपादन किया है और यह नियम है कि जो विकारी वस्तु होवे है तिसका अवश्य किसी कालमें नाशभी होवे है जैसे घटादिकोंका होवे है और आत्मा तो अविनाशी है किंच यावत् पर्यंत मनकी शुभाशुभ वृत्तियां हैं तिन सर्वकूं हि सर्वदा अखंडित आत्मा जाने है जो आत्माभी विकारी

होता तो कबी जानता कबी नहि जानता यातेंभी आत्मा निर्विकारहि सिद्ध होवे है और मन तो अपने घटपटादि विषयोंकूं कबी जाने है और कबी नहि जाने है यातें विकारीहि सिद्ध होवे है यातें हे शिष्य, मनभी तुं नहि ॥ तथा हे शिष्य, (प्राण-गणोऽपि नो) कहिये यह जो मुखनासिकादि द्वारोंविषे स्थित भया अन्नजलादिकोंके भक्षण और पचावनादि क्रिया करनेहारा प्राण अपान व्यान समान उदान नाग कूर्म कृकल देवदत्त धनंजय इस भेदसें दश प्रकारका शरीरविषे प्राणसमूह है सोभी तुं नहि काहेतें पंचमहाभूतोंके रजोअंशका कार्य होनेतें प्राणभी स्वतः जडहि है ॥ किंच जिस कालविषे पुरुष शयन करे है तो प्राण चलते रहते हैं परंतु तिस कालमें तिस पुरुषके पाससें कोई धनादिक वस्तु चोरादि उठाय करके ले जाते हैं तो कुछ खबर नहि पडती जो प्राणहि चेतनात्मा होता तो काहेतें नहि ज्ञानता यातें हे शिष्य, यह प्राणोंका समूहभी तुं नहि ॥ तथा (नो मतिः) कहिये हे शिष्य, शुभाशुभ कार्यके निश्चय करनेहारी जो यह बुद्धि है सोभी तुं नहि काहेतें पंच महाभूतोंके सत्त्वअंशका कार्य

होनेसें बुद्धिभी स्वतः जडहि है और विकारी है काहेतें जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें बुद्धि रहती है और सुषुप्तिकालमें तिसका विलय हो जावे है यातें हे शिष्य, उत्पत्ति विनाशवाली होनेतें बुद्धिभी तुं नहि ॥ यद्यपि मन और बुद्धिका परस्पर विशेष भेद नहि है तथापि बुद्धि स्वामीकी न्यांई कर्ता है और मन तिसका भृत्यकी न्यांई करण है अर्थात् कार्योंके निश्चय करनेमें साधनभूत है इस कारणसें यहां मन और बुद्धिकूं पृथक् पृथक् कथन किया है ॥ तथा (न चापि धीमन्नसि तत्समुच्चयः) कहिये हे बुद्धिमान् शिष्य, तिन शरीर इन्द्रिय मन प्राणादिकोंका मिलकरके एक समूहभी तुं नहि है काहेतें पंचमहाभूतोंके तीन गुणोंके कार्य होनेतें यह शरीर इन्द्रियादि सर्व संघात स्वतः जड है और जो कोई चार्वाकादि नास्तिक लोक ऐसे कहते हैं कि यद्यपि न्यारे न्यारे पृथिवी आदि भूत जड हैं परंतु तिनके एकत्र मिलनेसें तिनमें चेतनता उत्पन्न होवे है जैसे पान सुपारी चूना कथ्थाके मिलानेसें लाल रंगकी उत्पत्ति होवे है सो यह वार्ता असंभव है काहेतें यह नियम हैं कि जो एक एक वस्तु जड होवे हैं सो मिलानेसेंभी

जडहि रहती हैं जैसे लोकविषे प्रत्यक्षहि एक एक लकडी संचय करके भार बांधनेसेंभी जडहि रहे हैं ॥ किंच तिनके मिलानेहारा कोई भिन्न चेतन पुरुष होना चाहिये जो कहो लोह और चुंबककी न्यांई आपहि मिल जाते हैं तोभी तिनकूं परस्पर समीप रखनेवाला कोई चेतन पुरुषादि चाहिये ॥ किंच यहभी नियम है कि जो वस्तु अनेक पदार्थ जोडकरके एक निर्माण करी जावे है सो वस्तु तिनसे भिन्न अन्य किसी भोक्ता पुरुषके अर्थहि होवे जैसे ईंट काष्ठ मृत्तिकादिकोंकरके एक गृह निर्माण किया जावे है तो सो दूसरे चेतन पुरुषके अर्थहि होवे है तथा यह वार्ता सांख्यसूत्रोंमें कपिलदेवजीनेभी कथन करी है "संघातः परार्थः संहत्यकारित्वात्" अर्थ—यह शरीर इन्द्रियादिरूप संघात किसी दूसरे भोक्ता पुरुषके अर्थ है काहेतें मिलकरके कार्य करनेवाला होनेतें इति ॥ इस प्रकारसें जब शरीर इन्द्रियादि मेरा स्वरूप नहि है तो पीछे मैं क्या वस्तु हुं काहेतें इन शरीर इन्द्रिय प्राणादिकों कीही प्रतीति होवे है इनसें परे दूसरे किसी वस्तुकीभी प्रतीति नहि होवे है ॥ इस प्रकारकी शिष्यकी आकांक्षा होनेतें अब गुरु तिसका समाधान कहे हैं

(ततोऽन्यमात्मानं) कहिये हे शिष्य, इस शरीरसें लेकर बुद्धिपर्यंत इस संघातसें भिन्न और इन सर्वका जो साक्षी अर्थात् प्रकाश करनेहारा आत्मा है तिसकूं हि तुं अपना स्वरूप जान अर्थात् सोई तुं है ॥ यद्यपि हे शिष्य, तुंने जो कहा कि शरीर इन्द्रिय प्राणादिक हि प्रतीत होते हैं तिनसें परे अन्य कोई वस्तु प्रतीत नहि होवे है सो तेरा कहना ठीक है परंतु जिस करके यह शरीर इन्द्रिय प्राणादिकोंकी करामलकवत् भिन्न भिन्न प्रतीति होवे है तिस वस्तुका किस प्रकारसें अभाव संभवे है ॥ सोई सर्वसें परे और सर्वका अधिष्ठान साक्षी आत्मा तेरा स्वरूप है तथा गीतामेंभी कहा है "इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः" अर्थ—हे अर्जुन, यह स्थूल शरीर शब्दादि विषयोंकी अपेक्षासें परे कहिये अभ्यंतर है और तिन विषयोंसे इन्द्रिय परे हैं और इन्द्रियोंसें मन अभ्यंतर है और मनसें बुद्धि अभ्यंतर है और तिस बुद्धिसेंभी जो तिसका प्रकाशक अभ्यंतर है सोई आत्मा है इति ॥ सो तिस आत्मासें परे अन्य कोई नहि यह वार्ता कठउपनिषत्मेंभी कथन करी है "पुरुषान्न परं किंचित्

सा काष्ठा सा परा गतिः" अर्थ—सर्व शरीर इन्द्रिय प्राणादिकोंसें पुरुष जो आत्मा है सो परे है तिसतें परे कोई दूसरा नहि और सोई सर्वकी काष्ठा कहिये सीमा और परम गति है इति ॥ सो हे शिष्य, इस उक्त प्रकारसें जो मन और बुद्धिका साक्षी आत्मा है सोई तेरा स्वरूप है तथा अन्यत्रभी गुरुशिष्यके संवादमें कहाहै "को देवो यो मनो वेत्ति मनो मे दृश्यते मया । तर्हि देवस्त्वमेवासि एको देव इति श्रुतिः"अर्थ—शिष्यने प्रश्न किया कि हे गुरो, देव कौन है तो गुरुने उत्तर दिया कि जो मनकूं जानता है सोई देव है तो शिष्यने कहा कि आपने मनकूं तो मैहि जानता हुं तो पीछे गुरुने कहा तो हे शिष्य, तुं हि सो देव है काहेतें "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः"इत्यादि श्रुतियोंविषे एकहि देव कथन किया है इति ॥ ६१ ॥ इस प्रकारसें देह इन्द्रियादिकोंसे भिन्न अपने स्वरूपकूं श्रवण करके अब तिसहिके विशेष बोधके लिये शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

विचेष्टते केन मनः प्रचोदितं
करोति केनासुगणो गमागमौ ॥

वपुस्तथेदं ननु केन नीयते
हृदि प्रविष्टेन गुरुर्ब्रवीतु मे ॥ ६२ ॥

टीका—विचेष्टत इति ॥ हे भगवन्, यह जो संकल्पविकल्पात्मक मन है सो (केन) कहिये किसकरके (प्रचोदितं) कहिये प्रेरित भया निरंतर चेष्टा करे है अर्थात् नानाप्रकारके शुभाशुभ संकल्पविकल्प करे है ॥ तथा (असुगणः) जो प्राणापानव्यानादिरूप यह प्राणोंका समूह है सोभी किसकरके प्रेरित भया शरीरविषे अधो ऊर्ध्व गमनागमन करे है तथा (वपुः) कहिये जो यह स्वतः सत्तास्फूर्तिसें रहित जड स्थूल देह है सोभी किसकरके प्रेरित भया खानपानादि व्यवहारविषे प्रवृत्त होवे है सो हे गुरो, ऐसी क्या वस्तु हृदयदेशमें प्रविष्ट है जिसकरके यह मन आदिक सर्वेहि प्रेरित भये स्वस्वकार्यविषे प्रवृत्त होते हैं सो कृपाकरके मेरे प्रति कथन करो इति ॥ ६२ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

कर्णस्य कर्णं मनसो मनःश्रुति-
र्वाचं च वाचो यमसोरसुं जगौ ॥

तेनानिशं यंत्रमिवांतरात्मना
संप्रेरितं सर्वमिदं प्रवर्तते ॥ ६३ ॥

टीका— कर्णस्येति ॥ हे शिष्य, जिसकूं श्रुति जो वेद है सो (कर्णस्य कर्ण) कहिये श्रोत्रकाभी श्रोत्र और मनकाभी मन तथा वाचाकाभी वाचा और प्राणोंकाभी प्राण कथन करे है ॥ तथा सामवेदकी केनउपनिषत्में लिखा है "श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः" अर्थ—सो आत्मा श्रोत्रकाभी श्रोत्र और मनका मन और वाचाका वाचा और प्राणोंकाभी प्राण है इति ॥ अर्थात् जो आत्मा श्रोत्रादिकोंकी श्रवणादिरूप शक्तियोंका आश्रय-भूत है तिस साक्षीरूप अंतरात्माकरकेहि सर्वदा प्रेरित-भये यह श्रोत्रादिक सर्व स्वस्वक्रियाविषे प्रवृत्त होते हैं ॥ जैसे लोकविषे प्रसिद्ध नाना कलाकरके युक्त यंत्रमध्यस्थ चेतन पुरुषकरके प्रधानकलासें प्रेरितभया पश्चात् सर्व तरफसें चेष्टा करे है तैसेहि मध्यस्थ साक्षी आत्मा करके प्रथम प्रधानकलारूप बुद्धिप्रेरित होवे है पश्चात् बुद्धिकरके मन प्रेरित होवे है तदनंतर मनकरके प्राण प्रेरित होते हैं पश्चात् तिनकरके चक्षु आदि इन्द्रियप्रेरित होवे है तदनंतर चक्षु आदिकोंकरके स्थूलशरीर प्रेरित होवे है

इसप्रकारसें यह सर्व संघातरूप यंत्र जाग्रत् और स्वप्ना-वस्था विषे चलायमान रहे है और पुनः जैसे जिस कालमें सो यंत्रस्थ पुरुष प्रधानकलाका निरोध करलेवे है तो सर्व यंत्र निश्चेष्ट होजावे है तैसेहि सुषुप्तिकालविषे बुद्धिरूप प्रधानकालके स्वकारणभूत अज्ञानविषे लीन होनेतें यह संघातरूप यंत्र सर्वतरफसें निचेष्ट होयकरके पडा रहे है पुनः तहांसे स्वप्न अथवा जाग्रत् अवस्था होनेतें प्रवृत्त होवे है इसी प्रकारसें कैवल्यमोक्षपर्यंत अनेक कल्पकल्पांतरोंविषे पुनः पुनः प्रवृत्त रहे है इति ॥ ६३ ॥

इस प्रकारसें देह इन्द्रिय मन आदिकोंका प्रेरक साक्षी आत्माकूं संघातसें भिन्न श्रवण करके अब साक्षी आत्मा सर्वसें असंग है और तिसतें भिन्न सर्व संघात जड है यातें यह कर्ताभोक्तापणादिक किसके धर्म हैं इस प्रकारसें संशयकूं प्राक् प्राप्त भया शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

कर्तृत्वभोक्तृत्वमुखं किमात्मनः
किं धर्मजालं मनसोऽथवा मतेः ॥
किंवेन्द्रियाणां किमुतासुगं भवे-
देतद्दयालो वद मे विनिश्चितम् ॥ ६४ ॥

टीका—कर्तृत्वेति ॥ हे (दयालो) कहिये स्वाभा-

विक दयावान् गुरो, आपने जो कहा कि सर्व देह इन्द्रियादि संघातरूप यंत्रका प्रेरक साक्षी आत्मा है सो साक्षी आत्मा तो "असंगो ह्ययं पुरुषः" इत्यादि श्रुतियोंमें सर्वसंघातसें असंग निरूपण किया है और तिसतें भिन्न यह सर्वसंघात जड है यातें यह जो शुभाशुभ कर्मादिकोंका कर्तापना और भोक्तापनादि धर्मसमूह है सो (किमात्मनः) कहिये क्या साक्षी आत्माके हैं किंवा मनके धर्म है अथवा मति जो बुद्धि है तिसके हैं (किंवेन्द्रियाणां) कहिये अथवा श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके हैं किंवा प्राणोंके हैं अथवा इस स्थूलशरीरके हैं सो यह वार्ता निश्चयकरके मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ६४ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

कर्त्ता तु नात्मा न मनो न शेमुषी
नैवेन्द्रियाणीह न चासवस्तथा ॥
नाहंकृतिर्नापि वपुर्विवेकिनः
कर्त्तारमेषां तु समुच्चयं विदुः ॥ ६५ ॥

टीका—कर्तेति ॥ हे शिष्य, (कर्ता तु नात्मा) कहिये इस शरीरविषे जो साक्षी आत्मा है सो किंचित्भी

करता नहि काहेतें लोकविषे जो कर्ता होवे है सो नियमसें विकारी होवे है और आत्मा तो अनेक श्रुतिस्मृतियोंविषे निर्विकारहि प्रतिपादन किया है तथा भगवद्गीतामें कहा है "शरीरस्थोऽपि कौंतेय न करोति न लिप्यते" अर्थ—हे कौंतेय कहिये अर्जुन, यह आत्मा सर्वदा शरीरमें स्थित भयाभी कुछ नहि करता और किसी कर्मसें लिपायमानभी नहि होवे है इति ॥ और जो कर्ताभोक्तादिरूप धर्म आत्माविषे स्वाभाविक होते तो तिनकी निवृत्ति कबी नहि होती यातें कैवल्यमोक्षके प्रतिपादक सर्व वेद शास्त्र व्यर्थ होते तथा यह वार्ता सुरेश्वराचार्यनेभी कथन करी है "आत्मा कर्त्रादिरूपश्चेन्मा कांक्षीस्तर्हि मुक्तताम् ॥ नहि स्वभावो भावानां व्यावर्तेतौष्ण्यवद्रवेः ॥" अर्थ—हे वादिन्, जो आत्माका कर्ताभोक्तादिस्वरूपहि है तो तूं मोक्षकी आशा मतकर काहेतें जिस वस्तुका जो स्वाभाविक धर्म होवे है सो तिस वस्तुके नाश हुयेविना निवृत्त नहि होवे है जैसे सूर्यकी उष्णता विना सूर्यके नाश हुये निवृत्त नहि होवे है इति ॥ यातें हे शिष्य, आत्मा कर्ता भोक्ता नहि है ॥ तथा (न मनो) कहिये मनभी स्वतंत्र कर्ता नहि है काहेतें जड पंचभूतोंका

कार्य होनेतें मन स्वतः चेतनतातें रहित हैं यातें काष्ठलोष्टादिकोंकी न्यांई जडमें स्वतः क्रिया संभवे नहि ॥ तथा (न शेमुषी) कहिये बुद्धिभी कर्ता नहि काहेतें सोभी पंचमहतोंकाभू कार्य होनेतें स्वतः जडहि है ॥ तथा (नैवेन्द्रियाणि) कहिये श्रोत्रादिक जो इन्द्रिय हैं सोभी कर्ता नहि काहेतें सर्व इन्द्रियोंकी मनके अधीन चेष्टा होवे है तो जब मनहि जड हुया तो इन्द्रियां कहांसें चेतन हो सकती हैं यातें इन्द्रियभी कर्ता नहि ॥ तथा (न चासवः) कहिये हे शिष्य, प्राणापानादि जो पांच प्राण हैं सोभी कर्ता नहि काहेतें प्राण तो प्रत्यक्ष एक वायुरूप स्वतः जड पदार्थ है ॥ तथा (नाहंकृतिः) कहिये अहंकृति जो अहंकार है सोभी कर्ता नहि काहेतें अहंकारभी एक अंतःकरणकीहि वृत्तिविशेष है और सो अंतःकरण पंचमहाभूतोंका कार्य होनेतें स्वतः जड है यातें अहंकारभी कर्ता नहि हो सके है (नापि वपुः) कहिये वपु जो स्थूल देह है सोभी कर्ता नहि काहेतें रजोवीर्य अन्नदुग्धादि जड पदार्थोंका कार्य होनेतें यहभी स्वतः जडहि है और मरणकालमें जीवात्माके बाहिर निकस जानेसें तो प्रत्यक्षहि इसकी जडता प्रतीत

होवे है यातें स्थूल शरीरभी कर्ता भोक्ता नहि ॥ इस प्रकारसें यह सर्व पृथक् पृथक् कोईभी कर्ता भोक्ता नहि है ॥ जो कर्ता भोक्ता इनमें कोई भी नहि तो यह नानाप्रकारकी खानपानादि क्रिया किस प्रकारसें होवे है ऐसी शिष्यकी आकांक्षा होनेतें अब गुरु तिसका समाधान कहे हैं (कर्तारमेषां तु समुच्चयं विदुः) कहिये हे शिष्य, उक्त देह इन्द्रिय प्राणादिकोंका और आत्माका जो समुच्चय कहिये समूह है अर्थात् अविवेकसें मिश्रीभाव है तिसकूंहि विद्वान् तत्त्ववेत्ता लोक कर्ता भोक्त जानते हैं ॥ तथा यह वार्ता कठउपनिषत्मेंभी लिखी है "आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः" अर्थ—इन्द्रिय मन आदिकोंकरके संयुक्त भये आत्माकूंहि बुद्धिमान् लोक कर्ता भोक्ता कथन करते हैं इति ॥ इस प्रकारसें जब देह पर्यंत इन्द्रियादिकोंका भिन्न भिन्न विवेचन नहि होवे है तबपर्यंतहि जीवकूं शुभाशुभ कर्म लिपायमान करते हैं और जब पूर्वोक्त प्रकारसें विवेचन करके तिन सर्वसें अपने आत्माकूं असंग अकर्ता अभोक्ता दृढ निश्चय करे है तो पुनः तिस पुरुषकूं कोई शुभाशुभ कर्म लिपायमान नहि करसकते इसी अभिप्रायकूं लेकर भागवान्ने गीताके अठारवे अध्यायमें

कहा है "हत्वापि स इमान् लोकान्न हंति न निबध्यते" अर्थ—हे अर्जुन, सो ज्ञानीपुरुष इन तीन लोकोंकूंभी हनन करनेतें न तो हनन करता है और नहि लिपायमान होता है इति ॥ सो यद्यपि उक्त प्रकारसें दृढ निश्चयवान् पुरुषकूं पापकर्म लिपायमान नहि करसके हैं तथापि तिसकी पापकर्मविषे कदाचित्भी प्रवृत्ति नहि संभवै है काहेतें अज्ञानके वशतें देहादिकोंविषे अध्यास होनेतेंहि तिनके निमित्त पुरुषकी कदाचित् निषिद्ध कर्मोंविषे प्रवृत्ति होवेहै और ज्ञानी पुरुषको तो ज्ञानके प्रभावतें सर्व देहादिकोंविषे मिथ्यात्वबुद्धि होनेतें सो अध्यास नहि होवेहै यातें तिसका तिन मिथ्या देहादिकोंके अर्थ निषिद्ध कर्मविषे कदाचित्भी प्रवृत्ति नहि संभवे है तथा बृहदारण्यकउपनिषत्मेंभी कहा है "आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः। किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्" अर्थ—जिस कालमें यह पुरुष अपने आनंदस्वरूप आत्माकूं करामलकवत् अपरोक्ष अनुभव करे है तो पश्चात् सो किसके अर्थ और किस वस्तुकूं इच्छता हुवा अपने शरीरादिकोंकूं प्रयास देवे है अर्थात् नहि देवे है इति ॥ किंच अन्य लोकोंके संग्रहके निमित्तसें भी ज्ञानी पुरुषकी निषिद्ध कर्मोंविषे प्रवृत्ति

नहि होवेहै तथा यह वार्ता कौषीतकी उपनिषत्की व्याख्याविषे अनुभूतिप्रकाशमें विद्यारण्य स्वामिनेभी कथन करी है "शिष्टास्त्यजंति पापिष्ठं प्रत्यक्षं नरको हि सः ॥ तन्निंदकस्तस्य पापं गृहीत्वा नरकं व्रजेत् ॥ स्तोता कर्मी तु संसर्गात् स्वयमप्याचरेत्तथा ॥ इत्थं दोषत्रयं दृष्ट्वा शिष्टाः पापं त्यजंति हि" अर्थ—प्रथम तो जो पुरुष शास्त्रनिषिद्ध पापकर्मसें प्रवृत्त होवे है तिसका शिष्ट पुरुष परित्याग कर देते हैं काहेतें पापिष्ठ पुरुष प्रत्यक्षहि नरकके तुल्य होवे है और द्वितीय पापिष्ठ पुरुषकूं देखकरके जो तिसकी निन्दा करते हैं सो तिसके पापके भागी होनेतें नरककूं प्राप्त होते हैं और तृतीय जो पुरुष तिस पापिष्ठके अनुकूल वर्तनेहारे तिसकी स्तुति करते हैं सो आपभी तिसके अनुसार पापकर्मसें प्रवृत्ति होनेतें नरककूं प्राप्त होते हैं यातें इस प्रकारसें तीन महादोषोंकूं देखकरके विद्वान् ज्ञानी पुरुष पापकर्मोंका दूरसेंहि परित्याग कर देते हैं इति ॥ और जो कहीं पुराणोंविषे विश्वामित्र पराशर नारदादिकोंके वसिष्ठ मुनिके सौ पुत्रोंका हनन करना मत्स्योदरीका गमन करना जहां तहां परस्पर द्वेष कराना इत्यादि निषिद्ध कर्म श्रवणमें आते हैं सो तो तिनके प्रारब्धकर्मके अतिबलवान

होनेसें हुये हैं यातें उक्त वार्तामें विरोध नहि संभवे है इति ॥ ६५ ॥ पूर्वोक्त प्रकारसें जो आत्मा देह इन्द्रियादिकोंसें अत्यंत भिन्न अकर्ता और अभोक्ता पापपुण्यसें निर्लेप है तो पुनः सो इन देहादिकोंमें किस प्रकारसें बंधायमान होवे है इस अभिप्रायकूं लेकर शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

निबद्ध्यतेऽयं किल केन हेतुना
तथैव केनेह जनो विमुच्यते ॥
बंधश्च मोक्षश्च किमात्मकः स्मृतः
कृपार्द्रदृष्टे वद मे समासतः ॥ ६६ ॥

टीका—निबद्ध्यत इति ॥ हे (कृपार्द्रदृष्टे) कहिये स्वाभाविक कृपाकरके आर्द्रदृष्टिवाले गुरो, आपने कहा कि आत्मा देह इन्द्रियादिकोंसें भिन्न और शुभाशुभ कर्मोंकरके निर्लेप अकर्ता अभोक्ता है तो पुनः अयं कहिये यह आत्मा (केन हेतुना) कहिये किस कारणसें इन देह इन्द्रियादिकोंविषे परवश भया बंधायमान होवे है ॥ तथा सो इस प्रकार बंधनकूं प्राप्त भया पुनः तिस बंधनसें किस प्रकारसें (विमुच्यते) कहिये मोक्षकूं प्राप्त होवे है ॥ तथा बंध और

मोक्ष इन दोनोंका स्वरूप यथार्थ क्या है ॥ सो यह सर्वहि कृपा करके मेरेप्रति (समासतः) कहिये संक्षेपसें कथन करों ॥ ६६ ॥ इस प्रकारसें शिष्यके तीन प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिनका एकहि श्लोककरके उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

निबद्धयतेऽयं विषयानुरागतो
विरागतस्तेषु विमुच्यते द्रुतम् ॥
स्वभावतः संस्खलनं हि बंधनं
पुनः स्थितिस्तत्र विमुक्तिरुच्यते ॥ ६७ ॥

टीका—निबद्धयत इति ॥ हे शिष्य, (अयं) कहिये यह जो प्रकृत आत्मा है सो (विषयानुरागतः) कहिये शब्दस्पर्शादि जो विषय हैं तिनमें अनुराग अर्थात् आसक्ति करनेतेंहि देहादिकोंविषे बंधायमान होवे है ॥ और (विरागतः) कहिये हे शिष्य, जिस कालमें यह जीवात्मा तिन विषयोंसे दोषदृष्टिपूर्वक वैराग्यकूं प्राप्त होवे है तो (विमुच्यते द्रुतं) कहिये शीघ्रहि मोक्ष-पदकूं प्राप्त होवे है ॥ तथा यह वार्ता अन्यत्रभी गुरु-शिष्यके संवादद्वारा कथन करी है "बद्धो हि को यो विषयानुरागी को वा विमुक्तो विषये विरक्तः" इस

वाक्यका अर्थ ऊपर कहे अर्थके समानहि है ॥ अथवा विषय शब्दकरके यहां बुद्धिसें लेकर स्थूल देहपर्यंत पंचकोशोंका ग्रहण जानना काहेतें जो वस्तु जिसकर प्रकाशित होवे है सो तिसका विषय कहिये है सो बुद्धि आदि सर्व संघात साक्षी आत्माकरके प्रकाशित होवे है यातें सो विषय कहिये है तिसमें जो अनुराग कहिये आत्मा और अनात्माके अविवेचनपूर्वक कल्पित तादात्म्याध्यास है सोई आत्माके बंधनका हेतु है ॥ यह वार्ता सांख्यसूत्रोंमें कपिलदेवजीनेंभी कथन करी है "प्रकारांतरासंभवादविवेक एव बंधः" अर्थ—नित्यमुक्त असंगरूप आत्माके बंधनमें अन्य कोई प्रकारके नहि संभव होनेतें केवल जो आत्मा और अनात्माका परस्पर अविवेक हैसोई बंधनका कारण है इति ॥ तथ भगवद्गीतामेंभी कहा है "कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु" अर्थ—हे अर्जुन, इस आत्माका त्रिगुणोंके कार्यभूत देह इन्द्रियादिकोंके साथ जो संग है अर्थात् अध्यास है सोई नानाप्रकारकी नीन ऊंच योनियोंके ग्रहणविषे हेतु है इति ॥ तथा (विरागतः) कहिये पुनः गुरु और वेदांतशास्त्रोक्त रीतिकरके देहादिकोंसें आत्माका भिन्न विवेचनकरके

पश्चात् तिन देहादिकोंविषे जो अध्यासकी निवृत्ति है सोई मोक्षका कारण होवे है इस प्रकारसें प्रथमके द्विप्रश्नोंका उत्तर कथनकरके अब तीसरेका करे हैं (स्वभावतः) कहिये हे शिष्य, अपने स्वभावोंसे जो प्रच्युत होना है अर्थात् उक्त अध्यासकरके अपने नित्यत्व मुक्तत्व सच्चिदानंदमयत्वादि स्वभावकूं विस्मरण-करके बद्धत्व दुःखित्व परतंत्रत्वादि देह इन्द्रियादिकोंके स्वभावोंका जो अपनेमें आरोपण कर लेना है सोई बंध कहिये है ॥ और (पुनः स्थितिस्तत्र) कहिये वेदांतशास्त्रकी युक्तियोसें विवेचनकरके देह इन्द्रियादि-कोंके स्वभावके आरोपका परित्याग करके उक्त अपने सच्चिदानंदमयत्वादि स्वभावमें जो फिरकरके स्थित होना है अर्थात् तिसका दृढ निश्चय करना है सोई (विमुक्तिरुच्यते) कहिये मोक्षपद कहिये है ॥ तथा योगवासिष्ठमेंभी कहा है "ज्ञानस्य ज्ञेयतापत्तिर्बंध इत्यभिधीयते ॥ तस्यैव ज्ञेयताशांतिर्मोक्ष इत्यभि-धीयते" अर्थ—ज्ञानस्वरूप आत्माकूं जो देहइन्द्रिया-दिरूप ज्ञेयभावकी प्राप्ति है सोई बंध कहिये है और पुनः तिसहि आत्माकी जो विवेकद्वारा देहइन्द्रिया-दिरूप ज्ञेयभावकी शांति हो जाती है सोई मोक्ष

कहिये है इति ॥ ६७ ॥ इस प्रकारसें सहित हेतुके बंध और मोक्षका स्वरूप श्रवणकरके अब पुनः तिसहि जीवात्माके विशेषबोधके अर्थ शिष्य प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

जीवो विभुर्वाणुरुतापि मध्यमो
नानाऽथवैकः किमु मध्यसंख्यः ॥
नित्योऽथवा किं प्रलये विनश्यति
सर्वं तदेतत्कृपया वदाशु मे ॥ ६८ ॥

टीका—जीव इति ॥ हे भगवन्, यह जीवात्मा (विभुः) कहिये सर्वत्र व्यापक है किंवा (अणुः) कहिये अणुकेतुल्य सूक्ष्मपरिमाणवाला है अथवा (मध्यमः) कहिये मध्यम अर्थात् कुछ नियत परिमाणवाला है ॥ तथा नाना कहिये यह जीवात्मा प्रति देह भिन्न भिन्न होनेतें अनेक है किंवा सर्व शरीरोंमें एकहि है अथवा (मध्यसंख्यकः) कहिये इसकी कोई नियत संख्या है ॥ तथा यह जीवात्मा (नित्यः) कहिये सर्वदा अविनाशी है किंवा देहके मरण अथवा महाप्रलयविषे नाशकूं प्राप्त हो जावे है ॥ सो यह सर्वहि कृपाकरके मेरेप्रति शीघ्रही कथन करो इति ॥ ६८ ॥

यहां शिष्यके तीन प्रश्न हैं तिनमें प्रथम तो जीवात्माके परिमाणविषयक है और द्वितीय तिसकी संख्याविषयक है और तीसरा तिसकी नित्यता और अनित्यताविषयक है सो तिन सर्वका क्रमसें तीन श्लोकोंकरके गुरु उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

नाणुः समस्तावयवानुगो यतो
नो मध्यमोऽयं परिणामवर्जनात् ॥
आकाशवत्सर्वगतो हि गीयते
तस्मात्त्वमेनं विभुमेव निश्चिनु ॥ ६९ ॥

टीका—नाणुरिति ॥ हे शिष्य, यह जीवात्मा अणुके समान सूक्ष्म परिमाणवाला नहि है काहेतें यतो कहिये जिस कारणसें शरीरके शिखासें लेखर पादांगुष्ठपर्यंत (समस्तावयवानुगः) कहिये हस्तपादादि सर्व अवयवोंविषे अनुगत अर्थात् ओतप्रोत होय रहा है जो आत्मा शरीरके सर्व अवयवोंमें व्यापक नहि होता तो मेरे शिरमें वेदना है मेरे पादमें खेद है इस प्रकारका अनुभव एककालावच्छिन्न नहि होता और होवे है यातें आत्मा अणुपरिमाणवाला नहि और "वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।

भागो जीवः स विज्ञेयः स चानंत्याय कल्पते ॥"
अर्थ—शिरके बालके अग्रभागके सौ भाग करके पुनः तिनमेंसें एक भागके सौ भाग करनेतें जितना भाग सूक्ष्म होवे है तितना भाग जीव सूक्ष्म जानना चाहिये और सो जीवात्मा अनंत है इति ॥ इत्यादि श्रुतियोंविषे जो कहीं आत्माका सूक्ष्म परिमाण कथन किया है सो तो जीवात्माके जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्तिरूप तीन अवस्थाविषे गमनागमनमें मार्गभूत कंठसें लेकर हृदयपर्यंत हितानाम सूक्ष्म नाडियां हैं तिनविषे प्रवेश होनेतें जीवात्माकाभी गौणवृत्तिसें सूक्ष्मपणा कथन किया जान लेना ॥ तथा बृहदारण्यक उपनिषत्मेंभी लिखा है "ता वा अस्यैता हिता नाम नाड्यो यथा केशः सहस्रधा भिन्नः" अर्थ—सो यह इस आत्माके गमनागमनविषे मार्गभूत हिता नाम नाडियां हैं जैसे शिरका बाल हजार भाग करनेसें सूक्ष्म होवे है तैसी सूक्ष्म हैं इति ॥ तथा (नो मध्यमोऽयं) कहिये हे शिष्य, यह आत्मा मध्यम अर्थात् शरीरके तुल्य परिमाणवालाभी नहि है काहेतें जो शरीरके तुल्य परिमाणवाला होता तो जो आत्मा हस्तीके शरीरविषे है और पुनः कदाचित्

प्रारब्धकर्मकरके सो चींटीके शरीरकूं प्राप्त होवे तो तिसमें किस प्रकारसें समाय सकै है तद्वत् चींटीका आत्मा हस्तीके शरीरमें सर्व अंगोंविषे किस प्रकारसें व्यापक हो सकै है यातें हे शिष्य, यह आत्मा मध्यम परिमाणवालाभी नहि और जो कोई लोक ऐसे मानते हैं कि जब हस्तीका आत्मा चींटीके शरीरमें प्राप्त होवे है तो तिसके अवयव न्यून हो जाते हैं और जब चींटीका आत्मा हस्तीके शरीरमें प्राप्त होवे है तो तिसके अवयव अधिक हो जाते हैं सो यह वार्ताभी असंभव है काहेतें यह नियम है कि जो वस्तु परिणामी अर्थात् घटने बढनेवाली होवे है तिसका अवश्य किसी कालमें नाश होवे है और आत्मा तो सर्व श्रुतिस्मृतियोंविषे अविनाशी और परिणामसें रहित प्रतिपादन किया है और जो कथंचित् आत्माकूं नाशवान् मानें तो कृतनाश और अकृताभ्यागम अर्थात् इस जन्ममें किये हुये कर्मोंका भोगसें विनाहि नाश और विनाहि किये हुये मर्मोंका आगामि जन्मविषे भोग इन दोनों दोषोंकी प्राप्ति होवे है ॥ सो इस प्रकारसें उक्त दोनो पक्षोंके असंसव होनेतें परिशेषसें हे शिष्य,

तूं इस आत्माकूं (विभुमेव निश्चिनु) कहिये सर्व-व्यापकहि निश्चय कर काहेतें (आकाशवत्) कहिये यह आत्मा श्रुतिस्मृतियोंविषे आकाशकी न्याईं सर्वगतहि गायन अर्थात् प्रतिपादन किया है ॥ तथा श्रुतिः "आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः" अर्थ—यह आत्मा आकाशकी न्याईं सर्वगत और नित्य है इति ॥ तथा भगवद्गीतामेंभी कहा है नित्यः सर्वगतः स्थाणु-रचलोऽयं सनातनः अर्थ—हे अर्जुन, यह आत्मा नित्य सर्वगत स्थाणुकी न्याईं स्थिर अचल और सनातन है इति ॥ और जो पूर्व कथन किया कि सूक्ष्म नाडियां और हस्ती चीटी आदिकोंके शरीरोंविषे आत्माका प्रवेश होवै है सो तो जैसे घट और मंदि-रादि उपाधिकरके दीपककी प्रभाका संकोच विकाश होवे है तैसेहि आत्माकी उपाधिरूप जो अंतःकरण है तिसका प्रारब्धकर्मके वशतें संकोचविकाशद्वारा छोटे बडे शरीरोंविषे प्रवेश होवे है यातें आत्माकाभी गौणवृत्तिसें तिसके अनुसार प्रवेश कथन किया जावे है इस कारणतें आत्मा सर्वव्यापीहि सिद्ध होवे है इति ॥ इस प्रकारसें प्रथम प्रश्नका उत्तर कथनकरके अब जो शिष्यका संख्याविषयक द्वितीय प्रश्न है तिसका एक श्लोककरके गुरु उत्तर कहे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

रविर्यथैको निखिलाक्षिभासक-
स्तथाऽयमात्माऽखिलदेहदीपकः ॥
उपाधिभेदाच्च भवेद्व्यवस्थितिः
प्रमाणहीना तु तृतीयकल्पना ॥ ७० ॥

टीका—रविरिति ॥ हे शिष्य, (रविर्यथा) कहिये जैसे एकहि सूर्यभगवान् मनुष्य पशु पक्षी आदिक सर्व जंतुवोंके नेत्रोंकूं भिन्नभिन्न प्रकाशक करे है तथा कहिये तैसेहि यह एकहि आत्मा देव दानव नर मृग पक्षी आदिक सर्व शरीरोंविषे (दीपकः) कहिये प्रकाश करे है ॥ तथा यह वार्ता यजुर्वेदकी कठउपनिषत्‌मेंभी प्रतिपादन करी है "सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्वभूतांतरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥" अर्थ—जिस प्रकारसें एकहि सूर्य सर्व लोकोंके नेत्रोंविषे स्थित भया तिन नेत्रोंके अंधत्व मंदत्वादि दोषोंसें लिपायमान नहि होवे है तैसेहि एकहि आत्मा सर्व भूतप्राणियोंके शरीरोंविषे स्थित भया तिन शरीरोंके आध्यात्मिकादि दुःखोंसें लिपायमान नहि होवे है काहेतें

जिस कारणतें बाह्य कहिये तिन शरीरोंमें स्थित भयाभी तिनसें भिन्न है इति ॥ तथा गीतामेंभी कहा है "यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ॥ क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥" अर्थ—हे भारत कहिये अर्जुन, जैसे एकहि सूर्य सर्व चराचर जगत्कूं प्रकाशे है तैसेहि क्षेत्री जो साक्षी आत्मा है सो एकहि सर्व क्षेत्र कहिये शरीरोंकूं प्रकाशे है इति ॥ इस स्थलमें जो शिष्य ऐसी शंका करे कि जो सर्व शरीरोंविषे एकहि आत्मा है तो एकके बंधन हुये सर्वकूं बंधन होना चाहिये और एककी मुक्ति होनेतें सर्वकी मुक्ति हो जानी चाहिये और एकके सुखी होनेतें सर्वकूं सुख होना चाहिये तथा एकके दुःखी होनेतें सर्वकूं दुःख होना चाहिये और एकके हृदयकी वार्ताका दूसरेकूं ज्ञान होना चाहिये सो इन वार्ताओंमें होता तो कुछभी नहि यातें सर्व शरीरोंमें एकहि आत्मा है यह वार्ता कैसे संभवे है इस प्रकारकी शंकाके होनेतें अब गुरु तिसका समाधान कहे हैं (उपाधिभेदात्) कहिये हे शिष्य, बंधमोक्षादिकी जो व्यवस्था है सो आत्माकी उपाधि जो अंतःकरण है तिसके भेद अर्थात् परस्पर भिन्न

और नाना होनेतें संभवे है ॥ तथा यह वार्ता मांडूक्य-उपनिषत् की कारिकामें गौडपादाचार्यनेभी कथन करी है "यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते । न सर्वे संप्रयुज्यंते तद्वज्जीवाः सुखादिभिः ॥" अर्थ—जैसे एकहि आकाश अनेक घटोंविषे स्थित भया उपाधिकरके भिन्नभिन्न प्रतीत होवे है और जब तिन सर्व घटोंमेंसें एक घटमें रहनेहारा आकाश धूली अथवा धूमादिकोंकरके मलिन होवे है तो तिस कालमें दूसरे घटोंमें स्थित जो आकाश है सो सर्वहि मलिन नहि होजावे हैं तैसेहि एकके सुखी दुःखी बद्ध मुक्त होनेतें अन्य सर्व जीवात्मा सुखदुःखादिकोंकरके लिपायमान नहि होते हैं इति ॥ यातें हे शिष्य, इस प्रकारसें सर्व शरीरोंविषे एकहि आत्मा है वास्तविक आत्माविषे किसी प्रकारका भेद नहि है ॥ तथा श्वेताश्वतरउपनिषत्मेंभी कहा है "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा" अर्थ—एकहि देव सर्वभूतप्राणियोंविषे गूढ व्यापक और सर्वका अंतरात्मा है इति ॥ और शिष्यनें जो पूर्व कहा था कि जीवात्माकी कोई नियत संख्या होवेगी अब तिसका निराकरण करे हैं (प्रमाणहीना तु

तृतीयकल्पना) कहिये हे शिष्य, आत्माकी कोई कोटि दशकोटि आदि नियत संख्या होवेगी यह जो तेरी तृतीय कल्पना है सो तो प्रमाणहीना कहिये प्रमाणकरके रहित है अर्थात् तिसमें कोईभी श्रुति-स्मृतिका प्रमाण देखनेमें नहि आवे हैं यातें प्रमाणकरके हीन होनेतें सोभी संभवे नहि यातें सर्व शरीरोंमें एकहि आत्मा व्यापक है यह वार्ता सिद्ध भई इति ॥ ७० ॥ इस प्रकारसें आत्माकी व्यापकता और सर्व शरीरोंविषे एकता सिद्धकरके अब शिष्यने जो आत्मा नित्य है किंवा शरीरके नाशकाल अथवा प्रलयकालमें नाशकूं प्राप्त हो जावे हैं यह तीसरा प्रश्न किया था तिसका गुरु उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

समस्तवस्त्वेकविनाशसाक्षिणो
भवेद्विनाशो न कदापि केनचित् ॥
लये भवेच्चेद्वद कस्तदाश्रय-
स्ततस्त्वमं नित्यमवेहि देहिनम् ॥ ७१ ॥

टीका—समस्तवस्त्विति ॥ हे शिष्य, (समस्तव-स्त्वेकविनाशसाक्षिणो) कहिये इस चराचर जगत्विषे जो जो वस्तु जिस जिस कालमें नाशकूं प्राप्त

होवे हैं तिन सर्वका आत्मा साक्षी है अर्थात् जानने-हारा है सो जो इस प्रकारसें सर्व वस्तुवोंके विनाशका एक साक्षी आत्मा है तिसका कदापि कहिये शरीरके पात अथवा प्रलयादि किसी कालमेंभी (केनचित्) कहिये किसीभी शस्त्रादि निमित्तकरके विनाश नहि होवे है काहेतें यह आत्मा सर्वदा अविनाशी है ॥ यह वार्ता बृहदारण्यकउपनिषत्‌मेंभी लिखी है "अवि-नाशी वा अरेऽयमात्मा" अर्थ—अरे मैत्रियि, यह आत्मा अविनाशी है इति ॥ तथा गीताके दूसरे अध्यायमें कहा है "नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥ न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्यो शोष्य एव च" अर्थ—हे अर्जुन, इस आत्माकूं खड्गादि शस्त्र छेदन नहि कर सकते और सर्वके जलानेहारा जो अग्नि है सोभी जलाय नहि सकता तथा सर्व पदार्थोंके गलानेहारा जो जल है सोभी इसकूं गलाय नहि सकता और सर्वके शोषण करनेहारा जो वायु है सोभी इसकूं शोषण नहि करसकता काहेतें जिस कारणतें यह आत्मा अच्छेद्य कहिये छेदनकर्मका विषय नहि है और अदाह्य कहिये दहनक्रियाकाभी विषय नहि है

तथा अक्लेद्य कहिये गलनकर्मकाभी विषय नहि और अशोष्य कहिये शोषणकर्मकाभी विषय नहि है इति ॥ और हे शिष्य, जो तूं कहे कि (लये भवेच्चेत्) कहिये कथंचित् शरीरके पात अथवा महाप्रलयकालमें इस आत्माका नाश हो जाता होगा तो तु बताय कि तिस कालमें आत्माके नाशका कौन दूसरा आश्रय कहिये अधिष्ठान होवे है काहेतें विना किसी अधिष्ठानके किसी वस्तुका नाश नहि संभवे है और "सा काष्ठा सा परा गतिः" इत्यादि श्रुतियोंविषे सर्व वस्तुओंके नाशका अधिष्ठान एक आत्माहि कथन किया है यातें तिस आत्माके नाशका कोई अन्य अधिष्ठान संभवे नहि ॥ किंच सर्वके विनाशकूं जाननेहारे साक्षी आत्माकाभी जो नाश मानें तो तिसके नाशके जान-नेहारा अन्य कौन है अर्थात् कोईभी नहि संभवता काहेतें "नान्योऽतोस्ति ज्ञाता" इत्यादि श्रुतियोंविषे साक्षी आत्मासे भिन्न ज्ञाता पुरुषकाहि निषेध किया है यातें यह आत्मा अविनाशीहि सिद्ध होवे है ॥ तथा शंकराचार्यनेंभी कहा है "सर्वं विनश्यद्वस्तुजातं पुरुषांतं विनश्यति । पुरुषस्तु विनाशहेत्वभावान्न विनश्यति" अर्थ—सर्वंहि वस्तुसमूह नाशकूं प्राप्त

होता होता पुरुषपर्यंत नाशकूं प्राप्त होवे है और पुरुष तो विनाशके हेतुकरके रहित होनेतें नाशकूं प्राप्त नहि होवे है इति ॥ यातें हे शिष्य, इस देहमें रहनेहारे साक्षी आत्माकूं तूं (नित्यमवेहि) कहिये सर्वदा नित्य अर्थात् अविनाशी जान ॥ तथा कठउपनिषत्मेंभी कहा है "नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां" अर्थ—यह आत्मा प्रकृति आदि जो नित्य पदार्थ हैं तिनसेंभी नित्य है और बुद्धि आदि चेतनपदार्थोंसेंभी परम चेतन है इति ॥ ७१ ॥ यहां पर्यंत जीवके तटस्थ लक्षणोंका निरूपण किया और तिसतें प्रथम ईश्वरके तटस्थ लक्षणोंका वर्णन करि आये हैं ॥ सो इस पूर्वोक्त प्रकारसें जीव और ईश्वरके तटस्थ लक्षणोंकूं श्रवण करके अब शिष्य तिन दोनोंके स्वरूपलक्षणके जाननेके अर्थ पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

स्वरूपमीशस्य तु किं विनिश्चितं
तथाऽस्य जीवस्य च किं वपुर्भवेत् ॥
कियत्तयोरस्ति तथैव चांतरं
ब्रवीतु मे तत्त्वविदां वरो भवान् ॥ ७२ ॥

टीका—स्वरूपमिति ॥ हे (तत्त्वविदां वर) कहिये

सर्व आत्मतत्त्वके जाननेहारे पुरुषोंमें श्रेष्ठ गुरो, आपने जो पूर्व जगत्की उत्पत्ति स्थिति और प्रलयका हेतु ईश्वर कथन किया है तिसका श्रुतिस्मृत्योंतिविषे निश्चित भया क्या स्वरूप है तथा (अस्य जीवस्य) कहिये यह जो विभु नित्यादि लक्षणोंकरके ऊपर प्रतिपादन किया जीवात्मा है तिसकाभी निश्चित स्वरूप क्या है ॥ तथा हे भगवन्, तिन दोनों ईश्वर और जीवमें (कियत्) कहिये कितना परस्पर (अंतर) कहिये भेद हैं सो यह सर्वहि कृपा करके मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ७२ ॥ इस प्रकारसें शिष्यके तीन प्रश्न श्रवण करके अब गुरु एकहि श्लोककरके तिनका उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

मायायुतं ब्रह्म महेश्वरं बुधा
जीवं समेतं च वदंत्यविद्यया ॥
नैवांतरं किंचिदुपाधिमंतरा
सम्यग्विचारेण तयोस्तु लभ्यते ॥ ७३ ॥

टीका—मायायुतमिति ॥ हे शिष्य, (मायायुतं) कहिये मायाशक्तिकरके संयुक्त जो सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म है तिसकूं (बुधाः) कहिये विद्वान लोक ईश्वर

कहते हैं और (अविद्या) कहिये सोई ब्रह्म जो अविद्याकरके संयुक्त है तिसकूं जीव कहते हैं ॥ यहां यह तात्पर्य है ॥ जगत्के आदिमें[1] एक अद्वितीय सर्व परिपूर्ण सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्महि था और तिस ब्रह्मके किसी एक अंशमें त्रिगुणकी साम्या वस्थारूप प्रकृतिभी थी जैसे शरीरके किसी देशमें कालातिल होवे है सो तिस कालविषे तिस ब्रह्मकूं यह इच्छा भई कि "बहु स्यां प्रजायेय" अर्थात् मैं एकसें अनेकरूप होयकरके प्रकट होवूं ॥ तो इस प्रकारसें ब्रह्मका सत्यसंकल्प होनेतें तिसके आश्रय जो प्रकृति थी सो क्षोभकूं प्राप्त होती भई तो तीनों गुण अपनी साम्यावस्थाका परित्याग करके न्यूनाधिकभावकूं प्राप्त होते भये तो जिस भागमें सत्त्वगुणकी अधिकता और रजोतमोंकी अत्यंत न्यूनता भई तिसका नाम माया होता भया ॥ और जिस भागमें रजोगुणकी अधिकता और सत्त्वतमोंकी न्यूनता भई तिसका नाम अविद्या होता भया और जिस भागमें तमोगुणकी अधिकता और सत्त्वरजोंकी अत्यंत न्यूनता भई तिसका नाम तमःप्रधान प्रकृति

---

१ यद्यपि पूर्वजगत् अनादि सिद्धिकरिआये हैं तथापि यह कथन अध्यारोपकी रीतिसें जानना.

होता भया इस प्रकारसें गुणोंके न्यूनाधिकभावसें प्रकृतिके तीन भेद होते भये ॥ सो तिनमें जो प्रथम माया थी तिसमें सत्त्वगुणकी अधिकताके कारणसें अत्यंत स्वच्छता होनेतें तिस परिपूर्ण चेतनस्वरूप ब्रह्मका प्रतिबिंब होता भया तो पश्चात् सो प्रतिबिंब और माया और मायावच्छिन्न बिंबभूत ब्रह्म यह तीनों मिलकरके सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् नित्य शुद्ध बुद्ध ज्ञानस्वरूप ईश्वर हो जाता भया ॥ तैसेहि प्रकृतिका दूसरा भाग जो अविद्या थी तिसमें प्रतिबिंब पडनेसे सो अविद्या और तिसमें प्रतिबिंब और अविद्यावच्छिन्न ब्रह्म यह तीनों मिलकरके अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् बद्ध और मलिन जीव हो जाता भया ॥ और जो तमःप्रधान प्रकृतिका तीसरा भाग था तिसमें तमोगुणकी अधिकताके कारणसें अत्यंत मलिनता होनेतें ब्रह्मका प्रतिबिंब नहि पडा तो पश्चात् ईश्वरकी इच्छानुसार तिस तमःप्रधान प्रकृतिसें आकाशादि पंचमहाभूतोंकी उत्पत्तिद्वारा सर्व जगत्की उत्पत्ति होती भई ॥ इस प्रकारसें ईश्वर और जीवका स्वरूप-लक्षण वर्णन करके अब जो शिष्यने ईश्वर और जीवमें कितना परस्पर भेद है यह तीसरा प्रश्न

कियाथा तिसका उत्तर कथन करे हैं (नैवांतरं किंचिदुपाधिमंतरा) कहिये हे शिष्य, वेदांतशास्त्रकी युक्तियोंसें सम्यक् प्रकार विचार कर देखें तो (तयोः) कहिये तिन ईश्वर और जीवविषे पूर्वोक्त माया और अविद्यारूप उपाधिके भेदसें विना किंचित्मात्रभी अंतर कहिये भेद नहि प्रतीत होवे है इति ॥ ७३ ॥ इस प्रकारसें अकस्मात् ईश्वर और जीवकी एकता श्रवण करके अत्यंत विस्मयकूं प्राप्त भया शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

कथं महांभोधितरंगतुल्ययो-
र्विरुद्धधर्मास्पदयोः परस्परम् ॥
भवेदिहैक्यं परमेशजीवयो-
र्वदैतदात्मानुभवाङ्घ्रवार्तिहन् ॥ ७४ ॥

टीका—कथमिति ॥ हे (भवार्तिहन्) कहिये जन्ममरणरूप संसारजन्य दुःखके नाश करनेहारे गुरो, आपने जो कहा कि ईश्वर और जीवविषे उपाधिसें विना किंचित्मात्रभी अंतराय नहि है सो वार्ता कैसे संभवे है काहेतें (महांभोधितरंगतुल्ययोः) कहिये

ईश्वर तो महासमुद्रके तुल्य है और जीव तिसके एक तरंगके तुल्य है सो जैसे महागंभीरता उच्चैः गर्जना विपुल विस्तार होना अनेक मकरमत्स्यादिकोंका रहना और अनेक बडे बडे जहाजोंका चलना इत्यादि जो समुद्रके धर्म हैं ॥ और अल्प गंभीरता अल्प शब्द होना अल्प विस्तार होना अल्प जंतुवोंका रहना और बडे बडे जहाजादिकोंका नहि चलना इत्यादि जो तरंगके धर्म हैं सो दोनों परस्पर विरुद्ध हैं ॥ तैसेहि सर्वज्ञपना सर्वशक्तिपना नित्यमुक्तपना सर्वका नियंतापना स्वतंत्रपना इत्यादि जो ईश्वरके धर्म हैं ॥ और अल्पज्ञपना अल्पशक्तिपना बद्धपना पराधीनपना इत्यादि जो जीवके धर्म हैं तिन दोनोंकाभी परस्पर अत्यंत विरोध है ॥ यातें हे भगवन्, इस प्रकारसे समुद्र और तरंगके तुल्य और अनेक परस्पर विरुद्ध धर्मोंके स्थानभूत जो ईश्वर और जीव हैं तिन दोनोंकी यहां एकता कैसे संभवे है सो यह वार्ता मेरे अनुभवमें नहि आवती यातें आप कृपा करके अपने अनुभवके अनुसार यथावत् मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ७४ ॥ इसप्रकारसें शिष्यकी शंका होनेतें अब गुरु तिसका समाधान कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

यथाब्धिता चापि तरंगता तयो-
र्विहाय नीरैक्यमिहोपलक्ष्यते ॥
अपास्य जीवेश्वरभावमीक्ष्यते
तथा चिदानन्दमयं विचक्षणैः ॥ ७९ ॥

टीका—यथेति ॥ हे शिष्य, यद्यपि ईश्वर और जीवको परस्पर विरुद्ध धर्मोंकरके युक्त होनेतें तिनकी साक्षात् एकता नहि संभवे है यह तेरा कहना ठीक है तथापि भागत्यागलक्षणाकी रीतिसें तिन दोनोंकी एकता संभवे है ॥ सो जैसे दृष्टांतमें (अब्धिता) कहिये समुद्रका महागंभीरता उच्चैर्गर्जना विपुल विस्तारादि धर्मोंके सहित जो समुद्रपना है तिसके परित्याग कर देनेसें और तरंगका अल्प गंभीरता अल्प गर्जना अल्प विस्तारादि धर्मोंके सहित जो तरंगपना है तिसकेभी परित्याग कर देनेसें पश्चात् (नीरैक्यमिहोपलक्ष्यते) कहिये तिन दोनोंकी जलमात्र दृष्टिसें एकता संभवे है ॥ तैसेहि यहां दार्ष्टान्तमें (अपास्य जीवेश्वरभावं) कहिये ईश्वरका ईश्वरपना और जीवका जीवपना अर्थात् ईश्वरकी माया उपाधि और सर्वज्ञपना सर्वशक्तिपना स्वतंत्रपना आदि जो धर्म हैं तिनके

परित्याग कर देनेसें और जीवकी अविद्याउपाधि और अल्पज्ञपना अल्पशक्तिपना पराधीनपना आदि जो धर्म हैं तिनकेभी परित्याग कर देनेसें पश्चात् (चिदानन्दमयं) कहिये केवल सच्चिदानंदस्वरूपमात्रसें तिन दोनोंकी एकताका विचक्षण जो विवेकी जन हैं सो अनुभव करते हैं यहां यह तात्पर्य है ॥ जैसे समुद्रसें तरंग कोई भिन्न वस्तु नहि होता है तैसेहि ईश्वरसें जीव परमार्थसें कोई भिन्न वस्तु नहि है काहेतें श्रुतिमें कहा है कि "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" अर्थ—सो परमात्मा शरीरसहित इस सर्व जगत्कूं निर्माण करके पश्चात् आपहि जीवरूपसें तिसविषे प्रवेश कर जाता भया है इति ॥ तथा गीतामें श्रीकृष्णजीनेंभी कहा है "अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः । क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ॥" अर्थ—हे गुडाकेश कहिये अर्जुन, सर्वभूत प्राणियोंके अंतःकरणमें मैं स्थित होय रहा हुं । तथा हे भारत कहिये अर्जुन, क्षेत्ररूप सर्व शरीरोंविषे क्षेत्रज्ञ जो साक्षी आत्मा है सो तूं मेरेकूं हि जान इति ॥ यातें जीव और ईश्वरकी एकता तो स्वतःसिद्धहि है परंतु केवल जानने और न जाननेकाहि भेद है ॥ किंच "मृत्योः स मृत्युमा-

म्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ अथ योऽन्यां देवता-
मुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं
स देवानां" अर्थ—जो पुरुष इस आत्मामें नाना
अर्थात् भेद देखता है सो (मृत्योर्मृत्युं) कहिये मरणतें
दूसरे मरण अर्थात् वारंवार नानाप्रकारकी नीच ऊंच
योनियोंकूं प्राप्त होवे है ॥ तथा जो पुरुष मेरेसें देव
भिन्न है और मैं तिसतें भिन्न हुं इस प्रकारसें आत्मासें
भिन्न जानकर देवताकी उपासना करे है सो ठीक
नहि जानता किंतु सो देवतोंका पशु कहिये है इति ॥
इत्यादि अनेक श्रुतियोंविषे भेदकी निंदा श्रवणमें
आवे है और चारों वेदोमें अभेदकी निंदा कहींभी
श्रवणमें नहि आवे है यातेंभी जीवईश्वरका अभेदहि
वास्तव सिद्ध होवे है ॥ तथा मांडूक्य उपनिषत्की
कारिकामें गौडपादाचार्यनेंभी कहा है "जीवात्मनोर-
नन्यत्वमभेदेन प्रशस्यते । नानात्वं निंदते यच्च तदेव
हि समंजसम्" अर्थ—जीव और ईश्वरकी एकता
अभेदरूपकरकेहि वेदविषे प्रशंसित की है और उक्त
श्रुतियोंविषे तिनके भेदकी निन्दा की है यातें
(तदेवं) कहिये सो जीव ईश्वरकी एकता अभेदरूप-
सेंहि माननी योग्य है इति ॥ सो यावत् मात्र श्रुति-

स्मृतियोंके वाक्य जीवईश्वरकी एकताके प्रतिपादक हैं तिन सर्वविषे इसी प्रकारकी व्यवस्था जानलेनी ॥ सो इस उक्त प्रकारसें जीव और ईश्वरकी एकताका जो निःसंदेह जानना है तिसका नाम ही ब्रह्मज्ञान है और सोई जन्ममरणरूप संसारबंधनकी मुक्तिका हेतु है तिसहिके यथावत् संपादन करनेके अर्थ शास्त्रों-विषे नानाप्रकारके जप तप तीर्थ यज्ञादिकोंका विधान कियाहै इस ज्ञानकी प्राप्ति होनी येहि तिन सर्व जपतपादिकोंका मुख्य फल है तथा गीताविषे भग-वान्नेभी कहा है "सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिस-माप्यते" अर्थ—हे पार्थ कहिये अर्जुन, श्रुतिस्मृतियों-करके प्रतिपादित जो यज्ञादिक कर्म हैं सो सर्वहि ब्रह्मज्ञानके अंतर्भूत होवेहैं इति ॥ यातें संसारबंधनसें मुक्त होनेकी इच्छावाले सर्व जिज्ञासु जनोंको उक्त-प्रकारसें जीव और ईश्वरकी एकताका दृढ निश्चय करना योग्य है इति ॥ ७५ ॥ इस प्रकार त्रिताली-सके श्लोकसें लेकर यहांपर्यंत तत् और त्वंपदके विवेचनपूर्वक तिन दोनोंकी एकताका निरूपण किया सो तिस एकताका निःसंदेह जाननारूप जो ज्ञान है सो प्रथम अंतःकरणके शुद्ध हुयेविना कदा-

चित्‌भी सम्यक् प्रकारसें प्रादुर्भावकूं नहि प्राप्त होवेहै यातें अब तिसकी शुद्धिके अर्थ शिष्य पुनः प्रश्न करेहै ॥ यद्यपि तिस शिष्यका अंतःकरण प्रथमहि शुद्ध था काहेतें विना अंतःकरणकी शुद्धिके तिसके प्रति उक्त रीतिसें गुरुका उपदेश करना नहि संभवे है तथापि यह प्रश्न सर्व मुमुक्षु पुरुषोंके अर्थ साधारण जानलेना ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

बहूनुपायानवदन्निहर्षयो
विशुद्धयेऽन्तःकरणस्य निश्चितान् ॥
भवेत्तु तेषामचिरं विशोधको
महामते कस्तमुपादिशाशु मे ॥ ७६ ॥

टीका—बहूनिति ॥ हे (महामते) कहिये ज्ञान-विज्ञानसंपन्न मतिवाले गुरो, (इह) कहिये इस लोकमें व्यासवसिष्ठादिक तत्त्ववेत्ता महर्षि लोकोंनें (अंतःकरणस्य) कहिये अंतःकरणकी शुद्धिके अर्थ निश्चय करके जपतपादि अनेक उपाय पुराणादिकों-विषे कथन कियेहैं सो तिन सर्वका यथावत् सम्यक् प्रकारसें इस कलिकाल और अल्प आयुषविषे अनुष्ठान करना अत्यंत दुष्कर है यातें (तेषां) कहिये तिन

सर्व उपायोंमेंसें ऐसा कौन सुगम उपाय है कि जिसके अनुष्ठान करनेतें (अचिरं कहिये अनायाससें शीघ्रहि अंतःकरणकी शुद्धि होवे है सो हे भगवन्! तमुपादिशाशु मे) कहिये कृपा करके शीघ्रहि मेरेप्रति सो उपाय कथन करो इति ॥ ७६ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब गुरु एक श्लोक करकेहि तिसका उत्तर कथन करे हैं।

॥ गुरुरुवाच ॥

न तीर्थयात्राभिरिदं न चाध्वरै-
स्तपोभिरुग्रैर्न जपैर्व्रतैरपि ॥
तथा विशुद्ध्यत्यचिरं यथा हरे-
रनन्यचेतःस्मरणेन नित्यशः ॥ ७७ ॥

टीका—नेति ॥ हे शिष्य, (इदं) कहिये यह जो प्रस्तुत पुरुषका अंतःकरण है सो (तीर्थयात्राभिः) कहिये तैसे प्रयागादि तीर्थोंके अटन करनेतें शीघ्र शुद्ध नहि होवे है तथा (न चाध्वरैः) कहिये अध्वर जो नाना प्रकारके अश्वमेधादिक यज्ञ हैं तिनकरकेभी तैसे शीघ्र शुद्ध नहि होवे है तथा (तपोभिरुग्रैः) कहिये पंचाग्नितपनादिरूप जो उग्र तप हैं तिनकरकेभी तैसे शीघ्र शुद्ध नहि होवे है तथा (न जपैः) कहिये

गायत्री आदि नाना प्रकारके पवित्र मंत्रोंके विधिवत् जप करनेसेंभी तैसे शीघ्र शुद्ध नहि होवे है तथा (व्रतैरपि) कहिये कृच्छ्र चांद्रायणादि नानाप्रकारके जो व्रत हैं तिनकरकेभी तैसे शीघ्र अंतःकरणकी शुद्धि नहि होवे है जैसे कि (हरेरनन्यचेतःस्मरणेन) कहिये हरि जो विष्णु भगवान् हैं तिनके नित्यप्रति अनन्यचित्त होयकरके स्मरण करनेसें होवे है तात्पर्य यह ॥ भगवत्के आराधन करनेसें सर्व पापोंका शीघ्रहि विनाश होवे है पश्चात् स्वतःहि अंतःकरणकी शुद्धि होवे है जैसे वस्त्रके मल दूरकरनेतें पश्चात् स्वतःहि वस्त्रकी शुद्धि होवे है ॥ तथा महाभारतके शांति-पर्व विषे भीष्मजीनेंभी कहा है "किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ॥ यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः" अर्थ—जो पुरुष नित्यहि एकाग्र बुद्धिकरके नारायणका ध्यान करे है तिसको पुनः नाना प्रकारके विपुल दानोंके करनेसें क्या प्रयोजन है तथा नाना प्रकारके प्रयागादि तीर्थोंमें स्नान करनेसेंभी क्या प्रयोजन है और नाना प्रकारके पंचाग्नितपनादि उग्र तप करनेसेंभी क्या प्रयोजन है तथा नाना प्रकारके यज्ञोंके अनुष्ठान करनेसेंभी क्या

प्रयोजन है अर्थात् तिसको केवल नारायणके स्मरण करकेहि अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा कैवल्यमोक्षकी प्राप्ति होवे है इति ॥ तथा अन्य स्मृतिमेंभी कहा है ॥ "गंगास्नानसहस्रेषु पुष्करस्नानकोटिषु । यत्पापं विलयं याति स्मृते नश्यति तद्धरौ ॥ महापातकयुक्तोपि ध्याय-न्निमिषमच्युतम् । भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः" अर्थ—गंगाजीमें हजारवार स्नान करनेसें जो पाप नाश होवे हैं और पुष्करजीमें कोटि वार स्नान करनेसे जो पाप नष्ट होवे हैं सो सर्व पाप एक क्षणमात्र हरिके स्मरण करनेमात्रसेंहि नष्ट होजावे हैं। तथा ब्रह्महत्यादिक महापापोंकरके युक्त भयाभी पुरुष जो अच्युत भगवान्का एक निमिषमात्रभी सर्वदा ध्यान करे है तो सोभी पुनः तपस्वी और पंक्तियोंको पावन करनेहारे महात्मा पुरुष-कोंभी पावन करनेहारा हो जावे है इति ॥ यातें जिस पुरुषको शीघ्र अनायाससेंहि अंतःकरणकी शुद्धि करके ज्ञानप्राप्तिद्वारा कैवल्यमोक्षपदकी वांछा होवे है तिसको अन्य सर्व प्रयत्नोंका परित्याग करके केवल भगवत्काहि एकाग्र चित्त होकर आराधन करना योग्य है इति ॥ ७७ ॥

इस प्रकारसे अंतःकरणकी शुद्धिका मुख्य उपाय श्रवण करके अब पूर्व कथन किया जो ब्रह्मज्ञान सो

वेदांतशास्त्रकी रीतिसें तो यथार्थ मिलता है परंतु अन्य जो सांख्य योग न्यायादिक शास्त्र हैं तिनकी रीतिसें विशेष अंशसें विरुद्ध प्रतीत होवे है इस प्रकार संशयकूं प्राप्त भया शिष्य प्रमाणगत संशयके निर्णय करनेके अर्थ पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

अनेकशास्त्राणि पुरर्षिपुंगवैः
कृतानि सर्वाणि च युक्तिमंति वै ॥
प्रमाणता तेषु तु कस्य संभवे-
दशेषशास्त्रार्थविचारसारवित् ॥ ७८ ॥

टीका—अनेकेति ॥ हे (अशेषशास्त्रार्थविचार-सारवित्) कहिये सर्व शास्त्रोंके अर्थके विचारपूर्वक तिन सर्वका सार तत्त्व जाननेहारे गुरो, (पुरा) कहिये इस कलियुगके आगमनसें पूर्व अथवा इसके आदिकालमें सर्व ऋषियोंमें श्रेष्ठ व्यास वसिष्ठ पतंजलि जैमिनी गौतमादिक महर्षियोंनें जो अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न शारीरकादि शास्त्र निर्माण किये हैं सो आपुसमें सर्वहि (युक्तिमंति) कहिये नानाप्रकारकी युक्तियोंकरके संयुक्त प्रतीत होते हैं ॥ परंतु तिनमें बहुत स्थलोंविषे परस्पर विरुद्ध पदार्थोंका प्रतिपादन किया है यातें

इस वार्तामें मेरेकूं महासंशय होवे है कि तिनमेंसें कौन शास्त्र प्रमाण है सो हे भगवन्, (प्रमाणता तेषु तु कस्य संभवेत्) कहिये तिन सर्व शास्त्रोंमेंसें मुख्य प्रमाणता किस शास्त्रकी है सो मेरे प्रति कृपा करके कथन करो इति ॥ ७८ ॥ इस प्रकारसें प्रमाणविषयक शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब संक्षेपसें एक श्लोक-करकेहि तिसका गुरु उत्तर कहे हैं ।

॥ गुरुरुवाच ॥

यद्यद्धि वेदानुगतं सयुक्तिकं
तत्तत्तु बालोक्तमपीह गृह्यते ॥
तद्बाह्यमप्यंबुजजन्मनोदितं
प्रामाण्यमायाति वचो न कर्हिचित् ॥७९॥

टीका—यद्यद्धीति ॥ हे शिष्य, (यत् यत्) कहिये जो जो वाक्य (वेदानुगतं) कहिये वेदके अनुकूल अर्थात् वेदके अभिप्रायसें मिलता हुया और (सयुक्तिकं) कहिये युक्तिपूर्वक होवे सो वाक्य तो बालककरकेभी कथन किया होवे तो तिसका विद्वान् लोक ग्रहण करते हैं और जो (तद्बाह्यं) कहिये वेदके बाह्य अर्थात् विरुद्ध और युक्तिकरके रहित वाक्य है सो यद्यपि साक्षात् ब्रह्माभी कथन करे तो सो

(कहिंचित्) कहिये कदाचित्‌भी प्रमाणताकूं नहि प्राप्त होवे है ॥ तथा योगवासिष्ठके द्वितीय प्रकरण-मेंभी कहा है ("युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि। अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना") अर्थ— वेदके अनुकूल और युक्तिकरके युक्त जो बालकभी वचन कहे तो सो ग्रहण करने योग्य है और तिसके विरुद्ध जो ब्रह्माभी कथन करे तो तृणकी न्यांई तिसका परित्याग करना चाहिये इति ॥ तिनमें प्रथम वेद तो अपौरुषेय होनेतें सर्व शंका और दोषोंकरके रहित है यातें सर्वहि प्रमाणभूत है ॥ तथा तिसके अनुकूल अन्य जो महाभारतादि इतिहास और भाग-वतादि पुराण और मनु याज्ञवल्क्यादिकृत धर्मशास्त्र तथा वाल्मीकमुनिकृत महारामायणादि व्यासकृत शारीरकसूत्र इत्यादि शास्त्र हैं सोभी सर्व प्रमाणभूत हैं॥ और जो जैमिनिकृत पूर्वमीमांसा और पतंजलिमु-निकृत योगसूत्र तथा कपिलदेवकृत सांख्यसूत्र हैं सोभी विशेष अंशकरके वेदके अनुकूल होनेतें प्रमाण-भूत हैं और जो न्यायशास्त्र, वैशेषिकशास्त्र, जैनशास्त्र, चार्वाकशास्त्र इत्यादि वेदके विरुद्ध शास्त्र हैं सो सर्वहि प्रमाणभूत नहि हैं। यद्यपि तिनविषेभी क्वचित्

क्वचित् कोई कोई अंश वेदके अनुकूल प्रतीत होवे हैं जैसे कि न्यायशास्त्रमें ईश्वरका जगत्कारणपणा और जैनशास्त्रमें अहिंसाव्रत उपवासादिक हैं तथापि बहुत अंश करके वेदके विरुद्ध होनेतें तिनकूं प्रमाणता संभवे नहि। तथा मनुस्मृतिके द्वादशमें अध्यायविषेभी लिखा है "या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः। सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥" अर्थ—जो जो स्मृतियां और जो जो अन्य कुदृष्टयः कहिये स्वकपोलकल्पित चार्वाकादि दर्शन हैं सो सर्वहि निष्फल और प्रेत्य कहिये मरणके अंतमें नरकके देनेहारे हैं इति ॥ यातें आस्तिक मुमुक्षु पुरुषोंको तिन सर्वका दूरसेहि परित्याग करना योग्य है इति ॥ ७९ ॥ इस प्रकारसें प्रमाणगत संशयका समाधान श्रवण करके अब क्वचित् वेदमें "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" इत्यादि वाक्योंकरके केवल ज्ञानसेंहि मोक्षपदकी प्राप्ति कथन करी है और पुनः क्वचित् विद्ययाऽमृतमश्नुते" इत्यादि वाक्योंकरके उपासनासेंहि मोक्षकी प्राप्ति कथन करी है तथा पुनः क्वचित् "त्रिकर्मकृत् तरति जन्ममृत्युं" इत्यादि वाक्योंकरके कर्मोंकरकेहि मोक्षकी प्राप्ति कथन करी है सो इस प्रकारसें भिन्न भिन्न वाक्योंके प्रमाण होनेतें तिनमें

कौन प्रमाण है इस प्रकारसें संशयकूं प्राप्त भया शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

उपासनाज्ञानमुतापि कर्म वा
भवेद्दृढं किंनु विमोक्षसाधनम् ॥
अथो किमेतानि समुच्चितानि वा
किमन्यदप्यस्ति तदाप्तिकारणम् ॥ ८० ॥

टीका—उपासनेति ॥ हे भगवन्, सर्वदुःखोंकी अत्यंत निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिरूप जो मोक्ष है तिसकी प्राप्तिविषे दृढसाधन उपासना है किंवा ज्ञान है अथवा कर्म है अथवा (एतानि समुच्चितानि) कहिये यह उपासना ज्ञान कर्म तीनों एकत्र मिले हुये मोक्षके साधन हैं अथवा इन तीनोंसेंभी कोई अन्यत् कहिये भिन्नहि तिस मोक्षकी प्राप्तिका कारण है सो कृपा करके मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ८० ॥ इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका समाधान कहे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

नोपासना नैव च कर्म कारणं
मोक्षस्य नैवापि समुच्चयस्तयोः ॥

ज्ञानं वदंतीह तु तस्य साधनं
नान्योस्ति पंथा भवरोगशांतये ॥ ८१ ॥

टीका—नोपासनेति ॥ हे शिष्य, (मोक्षस्य) कहिये विदेहकैवल्यमोक्षकी प्राप्तिका उपासना साक्षात् कारण नहि है और (नैव च कर्म) कहिये कर्मभी साक्षात् साधन नहि है तथा (तयोः) कहिये तिन उपासना और कर्मका जो परस्पर समुच्चय है सोभी मोक्षका कारण नहि है अथवा तिन दोनोंका जो ज्ञानसें समुच्चय है सोभी मोक्षका मुख्य साधन नहिहै काहेतें जैसे प्रज्वलित भया दीपक पदार्थोंके प्रकाश-नेमें किसी दूसरे दीपादि प्रकाशकी अपेक्षा नहि करे है तैसेहि उत्पन्न भया ज्ञानभी मोक्षविषे किसी दूसरेकी अपेक्षा नहि करे है सो इस कारणसें (ज्ञानं वदंति) कहिये श्रुतिस्मृतियोंके वाक्य केवल ज्ञानकूंहि साक्षात् मोक्षका साधन कथन करते हैं ॥ तथा श्वेताश्वतरउपनिषत्मेंभी कहा है "ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः" अर्थ—ज्ञानद्वारा तिस परमात्मा देवकूं जानकरकेहि यह पुरुष जन्ममरणादिरूप संसारकी सर्व पाशोंसें मुक्त होवे है इति ॥ तथा अन्य स्मृतिविषेभी कहा है "ज्ञानादेव तु कैवल्यं प्राप्यते येन मुच्यते"

अर्थ—ज्ञानसेंहि कैवल्यमोक्षकी प्राप्ति होवे है जिस-करके यह पुरुष संसारबंधनसें मुक्त होवे है इति ॥ तथा गीतामेंभी कहा है "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्र-मिह विद्यते" अर्थ—हे अर्जुन, ज्ञानके समान इस लोकमें अन्य उपासनादि कोई पवित्र वस्तु नहि है इति ॥ सो हे शिष्य, इस प्रकारसे मोक्षकी प्राप्तिविषे ज्ञानहि मुख्य साधन है ॥ यद्यपि अंतःकरणकी शुद्धि और एकाग्रताद्वारा कर्म और उपासनाभी मोक्षके साधन हैं तथापि सो परंपरासे साधन हैं साक्षात् नहि साक्षात् तो केवल ज्ञानहि है यातें यहां केवल ज्ञान-कीही मुख्यता कथन करी है ॥ इस प्रकारसें प्रश्नके प्रथम अंशका उत्तर कहकरके अब जो शिष्यका यह प्रश्न है कि मोक्षकी प्राप्तिविषे कोई अन्यभी साधन है किंवा नहि तिसका उत्तर कथन करे हैं (नान्योस्ति पंथाः) कहिये हे शिष्य, जन्ममरणरूप जो महाभव-रोग है तिसकी शांति अर्थात् निवृत्तिके अर्थ दूसरा कोई मार्ग नहि है अर्थात् पूर्वोक्त आत्मज्ञानहि परम मार्ग है ॥ यह वार्ता श्वेताश्वतरउपनिषत्विषेभी कथन करी है "नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय" अर्थ—ज्ञानकेविना मोक्षकी प्राप्तिविषे कोई दूसरा मार्ग

नहिं है इति ॥ तथा योगवासिष्ठसेंभी लिखा है "ज्ञानान्निर्दुःखतामेति ज्ञानादज्ञानसंक्षयः ॥ ज्ञानादेव परा सिद्धिर्नान्यस्माद्राम वस्तुतः" अर्थ—हे रामचन्द्र, यह पुरुष ज्ञानसेंहि सर्व दुःखोंसें रहित होवे है और ज्ञानसेंहि अज्ञानका नाश होवे है तथा ज्ञानसेंहि परम सिद्धिरूप जो कैवल्यमोक्ष है तिसकी प्राप्ति होवे है अन्य किसी वस्तुसें नहि इति ॥ ८१ ॥ इस प्रकारसें मोक्षके सर्व साधनोंमेंसें ज्ञानकी मुख्य साधनताकूं श्रवण करके अब तिस ज्ञानके साधन और स्वरूप-लक्षणके बोध अर्थ शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

उपासनायाश्च तथैव कर्मणो
भवेद्विबोधस्य च किंनु साधनम् ॥
स्वरूपमेषां च किमस्ति निश्चितं
पृथक् पृथग्ब्रूहि विभो समासतः ॥ ८२ ॥

टीका—उपासनाया इति ॥ हे विभो कहिये आत्मस्वरूपसें सर्वव्यापक गुरो, आपने कहा जो मोक्षकी प्राप्तिविषे ज्ञानहि साक्षात् साधन है उपासना और कर्म नहि ॥ सो प्रथम तिस उपासना कर्म और विबोध जो ज्ञान है तिन तीनोंके क्या साधन है तथा

(स्वरूपमेषां) कहिये तिनका यथार्थ स्वरूपलक्षण क्या है सो यह सर्वंहि (पृथक् पृथक्) कहिये भिन्न भिन्न करके संक्षेपसें मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ८२ ॥ इस प्रकारसें शिष्यके दो प्रश्न श्रवण करके अब तिनका दो श्लोकोंकरके संक्षेपसें गुरु उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

श्रद्धा मनः स्थैर्यमुपासनस्य वै
स्वास्तिक्यवित्ताधिकतादिकर्मणः ॥
ज्ञानस्य वैराग्यविवेचनादिकं
विज्ञा वदंतीह तु साधनं पृथक् ॥ ८३ ॥

टीका—श्रद्धेति ॥ हे शिष्य, अपने इष्टदेवविषे जो परमश्रद्धा और मनकी स्थिरता है सो यह दोनों उपासनाके साधन हैं यहां श्रद्धा और मनकी स्थिरता यह दोनों उपासनाकी विधिका यथार्थ ज्ञान मरणपर्यंतका दृढ हठ और चित्तमें उत्साह इत्यादिकोंकेभी उपलक्षण हैं ॥ यद्यपि मनकी स्थिरता उपासनाके अनंतर होवे है तथापि किंचित् सामान्यसें प्रथमभी होनी चाहिये काहेतें अत्यंत चंचल मनवाले पुरुषका उपासनामें अधिकार नहि है इसी कारणतें अत्यंत चंचल पुरुषके प्रति योगशास्त्रविषे "तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणि-

धानानि क्रियायोगः" इस सूत्रमें कृच्छ्रचांद्रायणादिरूप तप करना वेद स्मृति अथवा गायत्री आदि मंत्रोंका अहर्निश अध्ययन करना और ईश्वरका नामोच्चारणादिरूप स्मरण करना इस प्रकारसें पतंजलि मुनिनें क्रियायोगका विधान किया है ॥ तथा (स्वास्तिक्यवित्ताधिकतादिकर्मणः) कहिये हे शिष्य, वेदके वाक्योंविषे और स्वर्गादि लोकोंविषे जो परम आस्तिकता है और अपने शरीरादि पोषणसें जो द्रव्यकी अधिकता है आदिशब्दसें द्विजातित्वादि अधिकारीपणा कर्मकी विधिका यथार्थ ज्ञान होना भोग अथवा मोक्षकी इच्छा होनी इत्यादि यह कर्मके साधन हैं ॥ तथा (ज्ञानस्य वैराग्यविवेचनादिकं) कहिये इस लोक और परलोकके विषयोंसें विराग और सत् असत्का विवेक आदिशब्दसें शम दम विश्वास तितिक्षादिरूप षट्संपत्ति और मोक्षकी उत्कट इच्छा तथा वेदांतशास्त्रका ब्रह्मनिष्ठ गुरुमुखद्वारा श्रवण मनन निदिध्यासन तत् और त्वंपदार्थका शोधन यह सर्व ज्ञानके साधन हैं ॥ सो हे शिष्य, (विज्ञा वदंति) कहिये विज्ञ जो तत्त्वदर्शी विद्वान् लोक हैं सो उक्त रीतिसें उपासना आदिकोंके भिन्न भिन्न साधन कहते हैं इति ॥ ८३ ॥

इस प्रकारसें प्रथम प्रश्नका उत्तर कथन करके अब तिन उपासनादिकोंका यथार्थ स्वरूप क्या है यह जो शिष्यका द्वितीय प्रश्न है तिसका उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

दानाग्निहोत्रादि तु कर्मणस्तथो-
पास्तेश्च चेतोर्पणमिष्टवस्तुनि ॥
ब्रह्मात्मनोरैक्यविनिश्चयं वुधाः
प्राहुर्विबोधस्य च लक्षणं पृथक् ॥ ८४ ॥

टीका—दानेति ॥ हे शिष्य, (दानाग्निहोत्रादि) कहिये दान करना और अग्निहोत्र करना आदिशब्द-करके इष्टापूर्त दत्तरूप जो तीन प्रकारके कर्म हैं तिन सर्वकाहि यहां ग्रहण जान लेना सो तिन तिनोंके लक्षण अन्य स्मृतिविषे कथन किये हैं "अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम् । आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्य-भिधीयते ॥ वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च । अन्न-प्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥ शरणागतसंत्राणं भूतानां चाप्यहिंसनम् । बहिर्वेदि च यद्दानं दत्त-मित्यभिधीयते" अर्थ—सायंप्रातः अग्निहोत्र होम करना तप करना सत्य भाषण करना वेदोंका पालन करना अतिथिकी सेवा करनी वैश्वदेव करना यह सर्व कर्म इष्ट

कहिये हैं ॥ तथा वापी कूप और तडाग लगाना देव-मंदिर बनाना अन्नक्षेत्र लगाना बगीचा लगाना यह सर्व कर्म पूर्त कहिये हैं ॥ तथा शरणागत जीवकी रक्षा करनी किसी भूतप्राणिकी हिंसा नहि करनी और यज्ञकी वेदिसें बाहिर जो दान करना है यह सर्व कर्म दत्त कहिये हैं इति ॥ इस प्रकारसें इन सर्वका नाम कर्म है ॥ तथा हे शिष्य, (इष्टवस्तुनि) कहिये विष्णु महादेवादिक जो ध्येय देव हैं तिनमेंसें जो अपना इष्ट होवे तिसविषे जो चित्तका अर्पण अर्थात् अन्य प्रत्ययके परिहारपूर्वक तैलधाराकी न्यांई ध्येयाकार प्रत्ययका जो सदृश प्रवाह संपादन करना है तिसका नाम उपासना है ॥ तथा (ब्रह्मात्मनोरैक्यविनिश्चयं) कहिये पूर्वोक्त भागत्यागलक्षणाकी रीतिसें ब्रह्म और जीवात्माकी एकताका जो दृढ निश्चय है तिसका नाम ज्ञान है ॥ सो हे शिष्य, इस प्रकारसें बुध जो तत्त्व-दर्शी लोक हैं सो पृथक् पृथक् कर्म उपासना और ज्ञानके लक्षण अर्थात् स्वरूप कथन करते हैं इति ॥८४॥ इस प्रकारसें कर्म और उपासनाके साधन और स्वरूपलक्षण तथा तिन दोनोंसें ज्ञानकी उत्कृष्टता श्रवण करके अब परवैराग्यपूर्वक जीवन्मुक्तिके सुखकी प्राप्तिके अर्थ शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

कस्येह वृक्षस्य फले सुखासुखे
शाखाश्च कास्तस्य मता महामते ॥
बीजं च मूलं च पदानि कानि किं
संक्षेपतो ब्रूहि पृथक् पृथग्गुरो ॥ ८५ ॥

टीका—कस्येति ॥ हे (महामते) कहिये ज्ञान-विज्ञानसंपन्नमतिवाले गुरो, (सुखासुखे) कहिये यह जो लोकविषे प्रसिद्ध सुख और दुःख भोगनेमें आते हैं सो यह दोनों (कस्य) कहिये किस वृक्षके फल हैं और तिस वृक्षकी विद्वान् लोकोंनें शाखा कौनसी मानी हैं तथा तिसका मूल क्या है और (पदानि) कहिये तिसकी जडें कौनसी हैं तथा तिस वृक्षका बीज क्या है सो हे गुरो, यह सर्वहि (पृथक् पृथक्) कहिये भिन्न भिन्न करके मेरेप्रति संक्षेपसें कथन करो इति ॥ ८५ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका गुह्य प्रश्न श्रवण करके अब एक श्लोककरकेहि गुरु तिसका उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

योऽनेकजन्मार्जितवासनापदः
संकल्पमूलोऽनुभवैकबीजकः ॥
धर्मेतरोत्तुंगलतोपशोभितः
कर्मद्रुमस्तस्य फले सुखासुखे ॥ ८६ ॥

टीका—य इति ॥ हे शिष्य, (अनुभवैकबीजकः) कहिये जिसका शब्दादिक विषयोंका जो अनुभव है सोई एक बीज है काहेतें जैसे प्रथम बीजके होनेतेंहि पश्चात् वृक्षके जड मूल शाखादिक उत्पन्न होवे हैं तैसेहि प्रथम अनुभवके होनेतेंहि पश्चात् वासना संकल्प धर्माधर्मादिक उत्पन्न होवे हैं तथा (वासनापदः) कहिये जिसकी अनादि संसारमें अनेक जन्मजन्मांतरोंविषे संपादन करी हुयी जो भोगोंकी वासना हैं सोई जडें हैं काहेतें जैसे जडोंसें पश्चात् अंकुरद्वारा वृक्षके मूल शाखादिक उत्पन्न होवे हैं तैसेहि वासनायोंसें पश्चात् संस्कारद्वारा संकल्पादिक उत्पन्न होते हैं ॥ तात्पर्य यह जैसे अंकुरकी जडोंकरके पुष्टता होवे है और जडोंकी अंकुरकरके पुष्टता होवे है तैसेहि वासनायोंकरके संस्कारोंकी पुष्टता होवे है और पुनः संस्कारोंकरके वासनायोंकी पुष्टता होवे है ॥ इस प्रकारसें इन दोनोंका अनादि संबंध है ॥ तथा (संकल्पमूलः) कहिये हे शिष्य, जिसका अपने स्वरूपमें व्युत्थान हुये मनका बहिर्मुख होय करके जो संकल्प विकल्प करणा हैं सोई मूल है काहेतें जैसे वृक्षके मूलसें क्रमकरके शाखाकी उत्पत्ति होवे है

तैसेहि संकल्पकरके शुभाशुभ क्रियाद्वारा धर्माधर्मकी उत्पत्ति होवे है यह वार्ता मनुस्मृतिके दूसरे अध्याय विषेभी कथन करी है "संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः ॥ व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः" अर्थ—नाना प्रकारके पदार्थोंकी इच्छारूप जो काम है तिसका मूल संकल्पहि है और जो जोतिष्टोमादि यज्ञ हैं सोभी सर्व संकल्पसें होते हैं तथा अन्य जो व्रत नियम धर्म हैं सोभी सर्व संकल्पसेंहि होते हैं ॥ इति ॥ तथा (धर्मेतरोत्तुंगलतोपशोभितः) कहिये हे शिष्य, धर्म और अधर्म अर्थात् पाप और पुण्यरूप (उत्तुंग) कहिये विस्तृत शाखाकरके जो शोभायमान होय रहा है यद्यपि पाप और पुण्य यह दोनों संख्यासें दोहि प्रतीत होते हैं तथापि इनके अवांतर भेद अनेकहि प्रकारके हैं यातें इनको अनेक शाखाकी उपमा संभवे है काहेतें जैसे वृक्षकी शाखायोंसें फलोंकी प्राप्ति होवे है तैसेहि पाप और पुण्यसेंहि सुखःदुखोंकी प्राप्ति होवे है सो हे शिष्य, इस प्रकारका जो (कर्मद्रुमः) कहिये कर्मरूप वृक्ष है तिसहिके फल सुख और दुःख है इति ॥ ८६ ॥ इस प्रकारसें कर्मरूप वृक्षके सुखदुःखरूप फलोंकूं श्रवण

करके अब "नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म-कृत्" इस गीताके वाक्यमें कहा है कि कोई पुरुष एक क्षणमात्रभी कदाचित् कर्मसें विना नहि स्थित हो सके है यातें कर्मका सर्वदाहि सद्भाव होनेतें तिसके फल सुखदुःखोंकाभी कदाचित् नाश नहि होवेगा यातें मोक्षपदकी सिद्धि कैसे होवेगी इस प्रकारसें संशय करके आविष्ट भया शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

कथं नु निर्मूलनमस्य चाचिरं
भवेद्गुरो कर्मतरोरशेषतः ॥
निरूढपादस्य च भीतिदायिनो
दयानिधे तद्वद मे विनिश्चितम् ॥ ८७ ॥

टीका— कथमिति ॥ हे (दयानिधे) कहिये स्वाभाविक दयाके समुद्र गुरो, आपने जो कहा कि कर्मरूप वृक्षके सुखदुःखरूप दोनों फल हैं और मैं तिन दोनोंसें रहित भया चाहता हूं यातें (कर्मतरोः) कहिये तिस कर्मरूप वृक्षका (अशेषतः) कहिये निःशेषसें अर्थात् सहित जडमूलके किस उपायकरके शीघ्रहि (निर्मूलनं) कहिये उखाडना होवे है सो हे भगवन्, यह कर्मरूप वृक्ष कैसा है (निरूढपादस्य)

कहिये जैसे अति पुरातन महान् वृक्षकी जडें नीचे पृथिवीविषे अत्यंत विस्तृत होयकरके दृढ जम जाती हैं तैसेहि इस कर्मरूप वृक्षकी वासनारूप जडें अंतःकरणरूप पृथिवीविषे अत्यंत दृढ करके जमी भई हैं ॥ तथा पुनः यह कर्मरूप वृक्ष कैसा है (भीतिदायिनः) कहिये भयके देनेहारा है अर्थात् जैसे महापुरातन वृक्षके आश्रय होयकरके पिशाच बलहीन पुरुषोंकूं भय देवे है तैसेहि कर्मरूप वृक्षके आश्रय होयकरके अज्ञानरूप पिशाच विवेकरूप बलकरके हीन पुरुषोंकूं जन्ममरणादिरूप भय देवे है यातें हे भगवन्, इस कर्मरूप वृक्षका जिसकरके शीघ्रहि मूल सहित छेदन होवे सो उपाय कृपा करके मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ८७ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका एक श्लोककरकेहि उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

वैराग्यमेवास्य दृढं दृढाशयाः
शस्त्रं वदंतीह विवेकसंशितम् ॥
तेनैनमुन्मूलय बोधवीर्यतो
नान्यत्तु तत्साधनमस्ति वै क्वचित् ॥ ८८ ॥

टीका—वैराग्यमिति ॥ हे शिष्य, (अस्य) कहिये इस कर्मरूप वृक्षके समूलसें छेदन करनेहारा पर वैराग्यरूपहि एक दृढ शस्त्र विद्वान् लोक कथन करते हैं सो शस्त्र यद्यपि दृढभी होवे परंतु शाण करके अग्रभागसें तीक्ष्ण नहि किया होवे तो सो महावृक्षके काटनेमें समर्थ नहि हो सके है यातें (विवेकसंशितं) कहिये सो वैराग्यरूप शस्त्र वेदांतशास्त्रजन्य विवेकरूप शाण करके सम्यक् प्रकारसें तीक्ष्ण किया हुया चाहिये ॥ यद्यपि सो दृढ और अग्रभागसें तीक्ष्णभी होवे परंतु छेदन करनेहारे पुरुषके शरीरमें जो बल नहि होवे तोभी तिससें वृक्षका मूलसें छेदन नहि संभवे है यातें (बोधवीर्यतः) कहिये आत्मस्वरूपका जो निःसंदेह दृढ बोध अर्थात् ज्ञान है सोई महाबल है यातें तिसकरकेभी मुमुक्षु पुरुषको संयुक्त होना चाहिये तथा ज्ञानकी बलरूपता केन उपनिषत्मेंभी दिखाई है "आत्मना विन्दते वीर्यं" अर्थ—आत्माके ज्ञानकरकेहि यह पुरुष बलकूं प्राप्त होवे है इति ॥ सो हे शिष्य, (तेनैनं) कहिये इस उक्त कर्मरूप वृक्षकूं इस प्रकारका पर वैराग्यरूप शस्त्र हस्तमें लेकरके (उन्मूलय) कहिये सहित जडों और मूलके उखाडकरके दूर डार

देहु जिससें तिसका पुनः कबीभी आरोहण नहि होवे ॥ तथा यह वार्ता गीताके पंदरवें अध्यायविषे भगवान्‌नेंभी प्रतिपादन करी है "अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा" अर्थ—हे अर्जुन, यह जो (विरूढमूलं) कहिये सम्यक् प्रकारसें दृढतर जमे हुये मूलवाला संसाररूप पीपलका वृक्ष है तिसकूं असंग अर्थात् वैराग्यरूप दृढ शस्त्रसें छेदन कर इति ॥ सो हे शिष्य, (नान्यत्तु तत्साधनमस्ति) कहिये उक्त कर्मरूप वृक्षके समूलसें छेदन करनेके अर्थ पर वैराग्यके विना दूसरा कोई कहींभी उपाय नहि है ॥ सो इस प्रकारसें जब वृक्षकाहि मूलसें छेदन होजावेगा तो पश्चात् तिसके फल कहांसे होवेंगे यातें हे शिष्य, पश्चाद् सुखदुःखसें रहित भया तूं केवल अपने सच्चिदानंद सामान्यसत्तास्वरूपविषे जीवन्मुक्त भया स्थित होवेगा इति ॥ ८८ ॥ इस प्रकारसें जीवन्मुक्तिसुखकी प्राप्तिविषे परवैराग्यकी मुख्य हेतुता श्रवण करके अब विषयसुखकी निंदापूर्वक आत्मसुखकी प्राप्तिकी वांछाकरके युक्त भया शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

सुखाय लोको यतते निरंतरं
सुखं च दुःखेन सदैव मिश्रितम् ॥

अमिश्रितं यन्नु तदाप्यते कथं
तदर्थिनं मे वद वेदविद्गुरो ॥ ८९ ॥

टीका—सुखायेति ॥ हे (वेदवित्) कहिये सर्व वेदगत रहस्यके जाननेहारे गुरो, यह पशु पक्षी मनुष्यादि लोक सर्वहि सुखप्राप्तिके अर्थ सर्वदा (यतते) कहिये नानाप्रकारके यत्न करते हैं परंतु सो जो विषयजन्य सुख है सो विचारदृष्टिसें देखें तो सर्वदाहि (दुःखेन मिश्रितं) कहिये दुःखकरके मिश्रित होय रहा है ॥ यद्यपि इस लोककी अपेक्षासें स्वर्गादि लोकोंविषे सुखकी विशेषता श्रवणमें आवे है तथापि तहांभी जो अपनेसें न्यून सुख भोगते हैं तिनकी तरफ देखकरके अभिमानकी उत्पत्ति होवे है और जो अपने बराबर सुख भोगते हैं तिनकी तरफ देखकरके चित्तमें ईर्षाकी उत्पत्ति होवे है तथा जो अपनेसें अधिक सुख भोगते हैं तिनकूं देखकरके हृदयमें ज्वलनता उत्पन्न होवे है इस प्रकारसें स्वर्गादि लोकोंमेंभी मानसदुःख बनाहि रहता है ॥ किंच देवतोंमें अश्विनीकुमार वैद्य श्रवणमें आवे हैं ॥ तिससें यह अनुमान होवे है कि देवतोंमें किंचित् शारीरिक दुःखभी अवश्य होता होवेगा नहि तो स्वर्गमें वैद्योंका क्या प्रयोजन था ॥ किंच गौतम मुनिके शापसें इन्द्रके शरीरमें सहस्र

भग हो गये थे और चंद्रमाके शरीरमें दक्षके शापसें क्षयरोग हो जाता भया है इत्यादि इतिहासोंमेंभी उक्त वार्ताकी सिद्धि होवे है ॥ यातें विषयसुखको सर्वदाहि दुःखकरके मिश्रित होनेतें सो सुखभी दुःखरूपहि है यह वार्ता सांख्यसूत्रोंमें षष्ठ अध्यायविषे कपिलदेवजीनेंभी कथन करी है "तदपि दुःखशबलमिति दुःखपक्षे निःक्षिपंते विवेचकाः" अर्थ—प्रथम तो इस जगत्‌में सुखहि अल्प है पुनः सोभी दुःखकरके शबल कहिये मिश्रित है यातें तिसकूंभी विवेकी पुरुष दुःखके पक्षमेंहि क्षेपण करते हैं इति ॥ यातें हे भगवन्, (अमिश्रितं यत्तु) कहिये जो सुख किस कालविषेभी दुःखकरके मिश्रित नहि है सो क्या है और (तदाप्यते कथं) कहिये तिसकी प्राप्ति किसी उपायकरके होवे है सो हे भगवन्, तिस परम सुखकी इच्छावाला जो मैं हुं सो मेरेप्रति कृपा करके कथन करो इति ॥ ८९ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

यस्यैतदानन्दमहोदधेर्लवं
सर्वं भवेन्निर्वृतमाश्रितं जगत् ॥

यत्र स्थितो वेत्ति न दुःखमण्वपि
तत्प्राप्यतेऽकामहतात्मवेदिना ॥ ९० ॥

टीका—यस्येति ॥ हे शिष्य, (यस्यैतदानंदमहोदधेः) कहिये जिस आनंदके समुद्ररूप ब्रह्मके एक लवमात्रकूं आश्रय करके यह सर्वहि चराचर जगत् (निर्वृतं कहिये) आनंदकूं प्राप्त होय रहा है यह वार्ता बृहदारण्यक उपनिषत्में भी कथन करी है "एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवंति" अर्थ—इसहि आनंदके समुद्ररूप ब्रह्मकी एक बिंदुकरके यह सर्व भूतप्राणी आनंदयुक्त होय रहे हैं इति तथा (यत्र स्थितः) कहिये हे शिष्य, जिस आनंदरूप ब्रह्मकेविषे निर्विकल्पसमाधिकालमें स्थित भया योगी पुरुष (अण्वपि) कहिये किंचित्मात्रभी दुःखका अनुभव नहि करे है यह वार्ता भगवत्गीतामेंभी कथन करी है "यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते" अर्थ—हे अर्जुन, जिस आनंदविषे स्थित भया योगी पुनः बडे भारी दुःखकरकेभी चलायमान नहि होवे है इति ॥ यातें हे शिष्य, ऐसा विषयसुखसें विलक्षण जो ब्रह्मका सुख है सोई दुःख करके अमिश्रित है इस प्रकारसें प्रश्नके प्रथम अंशका उत्तर कथन करके अब जो शिष्यने पूछा था कि सो सुख

किस उपायकरके प्राप्त होवे है तिसका उत्तर कथन करे हैं (तत्प्राप्यतेऽकामहतात्मवेदिना) कहिये हे शिष्य, नानाप्रकारकी कामनाकरके हत कहिये जिस पुरुषका चित्त प्रविद्ध नहि है ऐसा जो आत्मतत्त्व जाननेहारा जीवन्मुक्त ज्ञानी है सोई तिस ब्रह्मके संपूर्ण सुखकूं प्राप्त होवे है यह वार्ता तैत्तिरीयउपनिषत्‌मेंभी प्रतिपादन करी है "श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य" अर्थ—इस सर्व पृथिवीमंडलका एक चक्रवर्ती राजा होवे और नीरोग पुष्ट और बलिष्ठ शरीरवाला होवे तथा युवा अवस्था और सद्विद्याकरके संपन्न होवे तो तिसकूं जो सुख प्राप्त होवे है सो एक मनुष्योंका संपूर्ण आनंद कहिये है तिससें सौगुणा अधिक सुख गंधर्वोंकूं प्राप्त होवे और तिसतें सौगुणा अधिक देवगंधर्वोंकूं होवे है तथा तिसतें सौगुणा अधिक पितरोंकूं होवे है और तिसतें सौगुणा अधिक सुख आजानजदेवतोंकूं होवे है और तिसतें सौगुणा अधिक कर्मदेवतोंकूं होवे है और तिसतें सौगुणा अधिक अग्निआदिक मुख्य देवतोंकूं होवे है और तिसतें सौ-

१ आजानजदेवता कर्मदेवता मुख्यदेवता यह तीन भेद स्वर्गवासी देवतोंके हैं ॥

गुणा सुख देवतोंके राजा इन्द्रकूं होवे है तथा तिसतें सौगुणा अधिक देवतोंके गुरु बृहस्पतिकूं होवे है और तिसतें सौ गुणा अधिक कश्यप दक्षादि प्रजापतियोंकूं होवे है तथा तिसतें सौगुणा अधिक सुख ब्रह्माकूं होवे है सो यह सुख सर्व कामनाकरके रहित जो ब्रह्मनिष्ठ और ब्रह्मश्रोत्रिय ज्ञानी पुरुष है तिसकूं प्राप्त होवे है इति ॥ तथा यह वार्ता अन्य ग्रंथविषेभी कथन करी है "न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः ॥ यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकांतवासिनः" अर्थ—जो सुख एकांतमें वास करनेहारे वीतराग मुनिकूं प्राप्त होवे है सो सुख चक्रवर्ती राजा और देवतोंके राजा इन्द्रकूंभी नहि प्राप्त होवे है इति ॥ यहां यह रहस्य है ॥ ज्ञानी पुरुषको अपने आत्माकी सर्वव्यापकताका दृढ निश्चय होवे है तो जो आत्मा इन्द्रादिकोंके शरीरमें है तिसकूंभी सो आपणाहि आत्मा समझता है यातें जो इन्द्रादिकोंकूं सुख होवे है सो ज्ञानी पुरुष तिस सुखका भोक्ता अपनेकूंही माने है ॥ किंच इन्द्रादिकोंकूं अपनेतें अधिक जो ब्रह्मादिकोंका सुख है तिसकी सर्वदाहि अभिलाषा रहती है और ज्ञानी पुरुष सर्व अभिलाषाकरके रहित होवे है यातें तिसकूं इन्द्रादिकोंसेंभी अधिक निरतिशय आत्मसुखकी प्राप्ति होवे है ॥

सो हे शिष्य, जो तिस ब्रह्मानंदके अनुभव करनेकी तेरी वांछा होवे तो तुंभी सर्व कामनासें रहित होय-करके अपने आत्मस्वरूपविषे स्थित होहु इति ॥ ९० ॥ इस प्रकारसें परमानंदकी प्राप्तिरूप जो मोक्षका एक भाग है तिसकी प्राप्तिका उपाय श्रवण करके अब सर्व दुःखोंकी निवृत्तिरूप जो मोक्षका द्वितीय भाग है तिसकीभी जीवतेहुयेहि प्राप्तिके लिये पुनः शिष्य प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

तथैव दुःखापगमाय जंतवः
सदा यतंते स तु नैव सिद्धयति ॥
पदं नु किंचाखिलदुःखवर्जितं
भवेद्भवांस्तत्कृपया ब्रवीतु मे ॥ ९१ ॥

टीका—तथैवेति ॥ हे भगवन्, जिस प्रकार सर्व जीव सुखकी प्राप्तिके अर्थ यत्न करते हैं (तथैव) कहिये तैसेहि सर्व दुःखोंके दूरीकरणके अर्थभी सर्व भूतप्राणी यत्न करते दृष्टिमें आते हैं परंतु (स तु नैव सिद्ध्यति) कहिये अनेक प्रकारसेंभी तिस सर्व दुःखोंका दूरीकरणा यथावत् सिद्ध नहि होवे है ॥ तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि-भौतिक इस प्रकारसें दुःख तीन प्रकारके होवे हैं

तिनमें कफपित्तादिकोंकी विषमतासें शरीरविषे व्याधि होनेतें जो दुःख होवे है सो आध्यात्मिक दुःख कहिये है और अति शीत अति उष्णता अति वृष्टि अति वायुसें तथा मंगलादि नव ग्रहोंकरके जो पीडा होवे है सो आधिदैविक दुःख कहिये है तथा सर्प व्याघ्र चोरादिकोंसें जो क्लेश होवे है सो आधिभौतिक दुःख कहिये है इन तीनों प्रकारके दुःखोंकरके सर्वहि पृथिवीमंडल व्याप्त होय रहा है और इनकी निवृत्तिके अर्थ सर्व पुरुष यथाशक्ति सर्वदाहि उपाय करते हैं परंतु तिनकी निःशेषताकरके निवृत्ति नहि होवे है काहेतें तिनकी निवृत्तिके लौकिक साधन जो औषधादिक हैं तिनकरके प्रथम तो सर्व दुःखोंकी निवृत्ति नियमसें होतीहि नहि है और जो कथंचित् किसी उपायसें किसी दुःखकी निवृत्ति होभी जावे है तो पुनः कोई कालमें तिस दुःखका प्रादुर्भाव होवे हैं यातें औषधादिकोंसें सर्वथा सर्व दुःखोंकी निवृत्ति नहि होवे है यह वार्ता सांख्यसूत्रोंमें प्रथमाध्यायविषे कपिलदेवजीनेंभी कथन करी है "न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेप्यनुवृत्तिदर्शनात्" अर्थ—आध्यात्मिकादि जो त्रिविध दुःख हैं तिनकरके

अत्यंत निवृत्ति नहि होवे है काहेतें (अनुवृत्तिदर्शनात्) कहिये एकवार निवृत्ति होनेतेंभी पुनः तिनकी उत्पत्ति देखनेमें आवे है इति ॥ यातें हे भगवन्, (अखिलदुःखवर्जितं) कहिये आध्यात्मिकादि सर्व दुःखोंकरके रहित क्या पद है कि जिसके प्राप्त होनेतें पुरुषके सर्व दुःखोंकी निवृत्ति होवे है सो (कृपया) कहिये अपनी स्वाभाविक दयालुताकरके मेरे प्रति कथन करो इति ॥९१॥ इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब गुरु तिसका अनुवाद करते हुये उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

महेन्द्रलोकं भुवनं स्वयंभुवो
रमेशधामापि नगं पिनाकिनः ॥
प्रयातु पातालमपि प्रमुच्यते
न दुःखलेशात्तु विनात्मसंस्थितिम् ॥९२॥

टीका—महेन्द्रलोकमिति ॥ हे शिष्य, यह पुरुष चाहे (महेन्द्रलोकं) कहिये महेन्द्रलोक जो स्वर्ग है तहांभी कोई उपायकरके चला जावे तथा चाहे (भुवनं स्वयंभुवः) कहिये स्वयंभू जो ब्रह्मा है तिसके लोकविषेभी चला जावे चाहे (रमेशधाम) कहिये

रमेश जो विष्णु भगवान् हैं तिनकी निवासभूमि वैकुंठविषेभी किसी प्रयत्नकरके चला जावे तथा चाहे (नगं पिनाकिनः) कहिये पिनाकी जो महादेव हैं तिनकी निवासभूमि जो कैलास पर्वत है तहांभी किसी उपायकरके चला जावे अथवा चाहे (पातालं) कहिये बलिराजाके निवासका स्थान जो पाताल है तहांभी किसी उपायकरके चला जावे इत्यादिक अन्यभी जो ब्रह्मांडके भीतर अथवा बाह्य सुखदायक स्थान हैं तिनविषेभी किसी उपायकरके चला जावे परंतु हे शिष्य, (विनात्मसंस्थितिं) कहिये अपने आत्मस्वरूप-विषे जो निर्विकल्प स्थिति है तिसके विना यह पुरुष कदचित्‌भी सर्वथा दुःखके लेशसें छूट नहि सके है ॥ काहेतें तिनमें इन्द्रलोक जो स्वर्ग है तिसमें निरतिशय सुख नहि है यह वार्ता तो पूर्व समीपहि प्रतिपादन करि आये हैं ॥ किंच पुराणोंमें श्रवणमें आवे है कि जो पुरुष स्वर्गमें जाते हैं तो तिस कालमें तिनके गलेमें एक पुष्पोंकी माला पहराई जाती है और तिनके प्रति यह कहदिया जाता है कि जब यह माला कुम-लाय जावेगी तो तिसहि कालमें तुमारा स्वर्गसें पतन हो जावेगा यातें तिन पुरुषोंके चित्तमें सर्वदाहि ऐसा

भय बना रहता है कि नजाने किसकालमें यह माला कुमलाय जाय ॥ तथा गीताविषे भगवान्नेंभी यह वार्ता कथन करी है "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति" अर्थ—हे अर्जुन, जिस कालमें स्वर्गमें गये हुये पुरुषोंके पुण्य क्षीण हो जाते हैं तो पश्चात् सो पुनः इस मनुष्यलोकमें आते हैं इति ॥ यातें हे शिष्य, स्वर्गमें जानेसेंभी सर्व दुःखोंकी निवृत्ति नहि होवे है ॥ तथा जो पुरुष पंचाग्निविद्यादिक उपासना करके ब्रह्मलोकमें जाते हैं तिनकूं भोगमात्र तो ब्रह्माके समानहि प्राप्त होवे है परंतु ब्रह्मामें जो जगत्की रचनादि करनेकी सामर्थ्य है सो तिनकूं नहि प्राप्त होवे है ॥ और पुनः कल्पके अंतमें ब्रह्मलोकसेंभी केचित् भेददृष्टि वाले उपासकोंका नीचे पतन होवे है ॥ यह वार्ता गीतामेंभी कथन करी है "आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन" अर्थ—हे अर्जुन, ब्रह्मलोकसें लेकर स्वर्गादि लोकोंसें पुरुषोंकी पुनः इस लोकमें आवृत्ति होवे है इति यातें हे शिष्य, ब्रह्मलोकमें जानेसेंभी सर्व दुःखोंकी निवृत्ति नहि होवे है ॥ तथा वाल्मीकीय रामायणादिकोंविषे यह वार्ता प्रसिद्ध है कि विष्णु भगवान्के पार्षद जो जय विजय थे तिनकूंभी सनका-

दिकोंका शाप होना वैकुंठसे नीचे पतन होना राक्षस कुलमें जन्म होना पश्चात् अनेक प्रकारके क्लेशोंसें रणभूमिमें मरणा इत्यादि दुःख होते भये हैं यातें हे शिष्य, विष्णुलोकमें जानेसेंभी सर्वथा दुःखोंकी निवृत्ति नहि होवे है ॥ तथा योगवासिष्ठके निर्वाण प्रकरणके पूर्वार्धमें यह प्रसंग लिखा है कि एक समय योगिनीयोंनें ईर्षासें पार्वतीके शरीरकूं काट काट टुकडे कर और अग्निसें पचायकरके भोजन कर लिया तो पुनः महादेवके क्रोधके भयसें स्वस्वमुखसें एक एक अंग निकासकरके पार्वतीकूं जिलाय दिया और भागवतादिकोंमें लिखा है कि दक्षप्रजापतिके यज्ञमें जायकरके पार्वतीनें क्रोधकरके अपने शरीरकूं जलाय-कर भस्म कर दिया ॥ यातें हे शिष्य, इत्यादिक वार्तायोंसें जाना जावे है कि कैलासमें जानेसेंभी सर्वथा दुःखोंकी निवृत्ति नहि होवे है ॥ तथा भागवता-दिकोंमें श्रवणमें आवे हैं कि पातालमें बलिराजा अब पर्यंत बंधायमान है और जो अन्य राक्षसलोक तहां निवास करते हैं तिनके अर्थ विष्णुभगवान्नें अपना सुदर्शन चक्र छोडा हुया है सो जब जब राक्ष-सोंकी स्त्रियां गर्भकूं धारण करती हैं तो तिन सर्व

गर्भोंकूं सुदर्शन चक्र कच्चेहि गिराय देते हैं और महाभारतके उद्योगपर्वमें लिखा है कि पातालमें भोगवती नाम पुरीमें जो नागलोक निवास करते हैं तिनमेंसें एक नाग नित्यंप्रति गरुडभगवान् अपने भक्षणके अर्थ भेटा लेते हैं यातें हे शिष्य, पाताललोकमें जानेसेंभी सर्वथा दुःखोंकी निवृत्ति नहि होवे है ॥ इसी प्रकारसें अन्य गंधर्वलोक पितृलोकादिकोंमेंभी यथायोग्य जान लेना ॥ यातें हे शिष्य, आत्मस्वरूपविषे जो निर्विकल्पस्थिति है सोई सर्व दुःखोंसें रहित पद है तिसके विना उक्त स्वर्गादि लोकोंमें जानेसें दुःखका लेश बनाहि रहता है सर्वथा तिसकी निवृत्ति नहि होवे है तथा यह सर्व वार्ता योगवासिष्ठके स्थितिप्रकरणमें अपने पुत्रके प्रति दासुरमुनिनेंभी कथन करी है "यदि वर्षसहस्राणि तपश्चरसि दारुणम् ॥ पातालस्थश्च भूस्थश्च स्वर्गस्थश्चापि तत्त्व ॥ नान्यः कश्चिदुपायोस्ति संकल्पोपशमादृते" अर्थ—हे पुत्र, जो तूं पातालमें स्थित भया अथवा पृथिवीमें स्थित भया अथवा स्वर्गमें स्थित भयाभी हजारों वर्षपर्यंत उग्र तप करेगा तोभी तेरेकूं परमसुखकी प्राप्तिके अर्थ सर्व संकल्पोंसें रहित आत्मपदविषे स्थित होनेके सिवाय दूसरा कोई

उपाय नहि है इति ॥ यातें हे शिष्य, सर्व दुःखोंकरके रहित एक आत्मपदहि है यह वार्ता अन्यत्रभी कथन करी है "समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् ॥ न शक्यते वर्णयितुं तदा गिरा स्वयं तदंतःकरणेन गृह्यते" अर्थ—समाधिके अभ्यासकरके निर्मल भये चित्तकूं आत्माकेविषे स्थित करनेसें जो सुख होवे है सो वाणी करके कथन नहि किया जावे है किंतु तिस कालमें तिस सुखकूं योगी लोक अपने अंतःकरणकरकेहि अनुभव करते हैं इति ॥ तथा गीताके षष्ठे अध्यायमेंभी कहा है "प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ॥ उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्" अर्थ—हे अर्जुन, निर्विकल्पसमाधिकालमें, प्रशांतचित्तवाले योगी पुरुषकूं रजोतमोंके लेशमें रहित केवल सत्त्वमय ब्रह्मभूत अनुत्तम सुखकी प्राप्ति होवे है इति ॥ यद्यपि समाधिसें व्युत्थानकालमें योगीकूंभी किंचित् शीतोष्णादि द्वंद्वजन्य दुःखका अनुभव होवे है तथापि आत्मतत्त्वके दृढाभ्यासके होनेतें सो योगी तिस दुःख और तिसके शीतोष्णादि हेतु और तिसका आश्रय शरीर और अंतःकरण इन सर्वकूं अपने स्वरूपविषे मृगतृष्णाके जलकी न्यांई कल्पित माने है

यातें तिसकूं सर्वथाहि सर्व दुःखोंकी निवृत्तिपूर्वक परमानंदकी प्राप्ति होवे है यद्यपि योगीसें विना केवल ज्ञानी पुरुषभी दुःखादिकोंकूं आत्मस्वरूपविषे कल्पित जाने है तथापि तिसकों दृढाभ्यासके अभाव होनेतें देहविषे अधिक अभ्यास होवे है ॥ यातें दुःखकालमें तिसकूं अवश्य व्यथा होवे है ॥ यातें हे शिष्य, जो तेरेको जीवतेहि सर्व दुःखोंकी निवृत्तिकी इच्छा होय तो तुं भी निर्विकल्पसमाधिका अभ्यास कर इति ॥ ९२ ॥ इस प्रकारसें निर्विकल्पसमाधिकूं जीवन्मुक्तिके निरतिशय परमानंदकी हेतुता श्रवण करके अब यह समाधि ज्ञानसें प्रथमहि कर्तव्य है किंवा ज्ञान होनेके अनंतरभी कर्तव्य है इस प्रकारसें संशयकूं प्राप्त भया शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

ज्ञानोदयानंतरमस्य देहिनः
कर्त्तव्यमस्तीह न किंचनापि वा ॥
चेदस्ति किं तत्कृपया ब्रवीतु मे
सम्यग्भवानागमगोप्यगोचरः ॥ ९३ ॥

टीका—ज्ञानोदयानंतरमिति ॥ हे भगवन्, पूर्वोक्त

जीवब्रह्मकी एकताके निःसंदेह ज्ञानके उदय होनेके अनंतर प्रारब्धकर्मके क्षयपर्यंत इस शरीरधारी ज्ञानी पुरुषको इस लोकमें पुनः (कर्तव्यमास्ति) कहिये किसी प्रकारका कर्तव्य शेष रहता है किंवा किंचित् मात्रभी नहि रहता काहेतें बहुत स्थलोंमें वेदांतशास्त्रों विषे श्रवणमें आवे है कि ज्ञानके उदय होनेके पश्चात् पुरुषको किंचित्मात्रभी कर्तव्य शेष नहि रहै है तथा श्वेताश्वतरउपनिषत्के भाष्यमें लिखाहै "ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ॥ नैवास्ति किंचित् कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित्" अर्थ—ज्ञानरूप अमृतकरके तृप्त जो कृतकृत्य योगी पुरुष है तिसको पुनः इस लोकविषे किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहि रहे हैं और जो पुनःभी रहे है तो सो यथार्थतत्त्ववेत्ता ज्ञानी नहि है इति ॥ और (चेदस्ति) कहिये हे भगवन्, जो ज्ञानके अनंतरभी किंचित् कर्तव्य शेष रहे है तो सो कर्तव्य क्या है ॥ सो सर्व शास्त्रोंके (गोप्यगोचरः) कहिये गोप्य रहस्यके सम्यक् प्रकारतें जाननेहारे जो आप हैं सो मेरेप्रति कृपाकरके कथन करो इति ॥ ९३ ॥ इस प्रकारसे शिष्यका प्रश्न श्रवणकरके अब गुरु तिसका अनुवाद करते हुये उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

ज्ञानामृतातृप्तमतेर्विवेकिनो
नैवास्ति किंचित्करणीयतां गतम् ॥
यद्यस्ति तद्वृत्तिनिरोधनं सदा
नान्यत्कदापीति वदंति सूरयः ॥ ९४ ॥

टीका—ज्ञानामृतातृप्तमतेरिति ॥ हे शिष्य, जीव-ब्रह्मकी एकताके निःसंदेह ज्ञानरूप अमृतकरके जिस पुरुषकी सर्व तरफसें बुद्धि तृप्त होय रही है तिसको इस लोकमें पुनः किंचित्मात्रभी (करणीयतां गतं) कहिये कार्य करनेयोग्य नहि है ॥ यह वार्ता गीताविषेभी कथन करी है "नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन" अर्थ—हे अर्जुन, तिस ज्ञानी पुरुषको इस लोकमें कर्म करनेसेंभी कुछ प्रयोजन नहि है और कर्मोंके नहि करनेसेंभी कुछ प्रयोजन नहि है इति ॥ काहेतें "ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ ज्ञानादेव तु कैवल्यं प्राप्यते येन मुच्यते" इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंविषे केवल ज्ञानमात्रमेंहि मोक्षपदकी प्राप्ति कथन करी है और हे शिष्य, जो कथंचित् ज्ञान होनेके अनंतर ज्ञानी पुरुषको सदाचारसें अथवा जीवन्मुक्तिके सुखके अर्थ कुछ कर्तव्य मानेंभी तो (वृत्तिनिरोधनं) कहिये प्रमाण-

विपर्ययविकल्पादि जो चित्तकी वृत्तियां हैं तिनका जो सर्वदाहि अभ्यास करके निरोध करना है सोई कर्तव्य है (नान्यत्) कहिये तिसके विना अन्य तिसको कोई कदाचित्भी कर्तव्य नहि है ऐसे (वदंति सूरयः) कहिये व्यासवसिष्ठादिक विद्वान् लोक कथन करते हैं॥ यहां यह तात्पर्य है॥ कृतोपासन और अकृतोपासन इस भेदसें ज्ञानी द्विप्रकारके होवे हैं तिनमें जिसको प्रथम इस जन्मविषे देवता उपासना अथवा योगाभ्यास-द्वारा पश्चात् ज्ञानकी प्राप्ति होवे है सो ज्ञानी कृतो-पासन कहिये है जैसे कि राजा शिखिध्वज शुकदेवादिक हुये हैं और जिनको केवल यज्ञादिक निष्काम कर्मोंकरके अंतःकरणकी बुद्धिद्वारा ज्ञानकी प्राप्ति होवे है सो ज्ञानी अकृतोपासन कहिये हैं जैसे कि राजा जनक अर्जुनादिक हुये हैं तिनमें जो कृतोपासन हैं तिनको तो चित्तवृत्तियोंका निरोध प्रथमसें हि सिद्ध होवे है यातें सो अनायाससेंहि ज्ञानप्राप्तिके अनंतर जीवन्मुक्तिके सुखका अनुभव करते हैं जैसे कि शुकदेवादिकोंने किया है॥ और जो अकृतोपासन हैं तिनको तो ज्ञान होनेके अनंतर जीवन्मुक्तिके सुखकी प्राप्तिके अर्थ अवश्यहि चित्तकी वृत्तियोंके

निरोधके अर्थ अभ्यास करना योग्य है. इसी कारणसें श्रुतिस्मृतियोंविषे विद्वत्संन्यासका विधान किया है जो ज्ञान होनेके अनंतर कोई कर्तव्य नहि होता तो विद्वत्संन्यासका क्या प्रयोजन था और याज्ञवल्क्यादिकोंनें ज्ञानके अनंतर धारणभी किया है यह वार्ता बृहदारण्यक उपनिषत्में प्रसिद्धहि है ॥ किंच ज्ञानकी सप्तभूमिका वेदांतशास्त्रमें कथन करी हैं तिनमें ज्ञानकी प्राप्ति तो सत्त्वापत्तिनाम चतुर्थ भूमिकाविषेहि होय जावे है और जो तिसके अनंतर कुछ कर्तव्य नहि होता तो पश्चात् ऊपरकी तीन भूमिका विधान करनेका क्या प्रयोजन था यातें इत्यादि वार्तायोंसें यह निश्चय होवे है कि ज्ञानके अनंतरभी अभ्यास कर्तव्य है ॥ किंच ज्ञानके अनंतर अभ्यास करनेसें प्रथम श्रवणादिकोंसें जो सामान्य ज्ञान होवे है तिसकी दृढता हो जावे है जो श्रवण और मननमात्रसें हि दृढ ज्ञान हो जाता तो समाधिकी प्रथमावस्थारूप जो निदिध्यासन है तिसका सर्व वेदांतशास्त्रोंमें काहेतें विधान किया जाता ॥ किंच श्रीकृष्णभगवान्‌के मुखसें संपूर्ण गीताकूं श्रवण करके अंतमें अपने मुखसेंहि अर्जुनने कहा है "नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसा-

दान्मयाच्युत" अर्थ—हे अच्युत, तुमारे प्रसादकरके अब मेरा अज्ञान नष्ट होगया है और मैंने अपने स्वरूपकी स्मृतिरूप जो ज्ञान है तिसकूं पाया है इति ॥ और पश्चात् तहांहि महाभारतके अश्वमेधपर्वविषे पुनः अर्जुनने कहाहै कि हे भगवन्, जो युद्धभूमिविषे आपने मेरेप्रति ज्ञानोपदेश किया था सो मैं युद्धादिक व्यवहारोंमें आसक्त होनेतें अब सर्वहि भूल गया हूं यातें अब मेरेप्रति पुनः उपदेश करो तो पश्चात् तहां भगवान्ने पुनः तिसके प्रति अनुगीताका उपदेश किया है ॥ तैसेहि योगी याज्ञवल्क्यसंहिताविषे एकवार उपदेशके भूल जानेसें गार्गीके प्रति याज्ञ-वल्क्यने पुनः दूसरीवार उपदेश किया है तैसेहि व्यासजीने शुकदेवकेप्रति द्विवार उपदेश किया और दृढ न भया पुनः तीसरीवार राजा जनकने उपदेश किया है सो इत्यादिक वार्तायोंसें निश्चय होवे है कि अभ्यासके विना उत्पन्न भयाभी ज्ञान लुप्त होय जावै है ॥ तथा योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणमें वसिष्ठ मुनिनेभी कहा है "अविद्योपशमस्त्वेष जातोपि भवता-मिह ॥ अभ्यासेन विना साधो न सिद्धिमुपगच्छति" अर्थ— हे साधो, कहिये सर्व पुरुषोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्र,

मेरे उपदेशकर यद्यपि तुमारी अविद्याका नाश होयभी गया है परंतु अभ्यासरसें विना तिसकी यथावत् सिद्धि नहि होवेगी इति ॥ तथा अथर्ववेदकी परमहंसउपनिषत्में लिखा है "अथ योगिनां परमहंसानां कोयं मार्गः" अर्थ—एक समय नारदजीनें ब्रह्माके पास जायकरके प्रश्न किया कि हे भगवन्, जो पुरुष योगी और परमहंस हैं तिनका क्या मार्ग है इति ॥ सो इस श्रुतिविषे परमहंस और योगी इन दोनों पदोंका एकत्रहि विधान किया है ॥ सो हे शिष्य, इत्यादिक वार्तायोंसें यह सिद्ध भया कि अकृतोपासन पुरुषको ज्ञानके अनंतरभी चित्तवृत्तियोंका निरोध अवश्य कर्तव्य है और इस समयमें तो प्रायः अकृतोपासनहि ज्ञानी होते है इसलिये तिन सर्वकूं अभ्यास करना योग्य है इति ॥ ९४ ॥ इस प्रकारसें चित्तवृत्तियोंके निरोधकी आवश्यकता श्रवण करके अब तिनके निरोध करनेका उपाय जनानेके अर्थ पुनः शिष्य प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

इमा ध्वजाग्राग्निशिखातडित्प्रभा
नदीरयाश्वत्थदलालिचंचलाः ॥

कथं निरुद्धा ननु चित्तवृत्तयो
भवंति तन्मे वद योगिनां पते ॥ ९८ ॥

टीका— इमां इति ॥ हे योगिनांपते, कहिये सर्व योगियोंमें शिरोमणि गुरो, आपने कहा कि चित्तकी वृत्तियोंका निरोध अवश्य कर्तव्य है सो (इमा) कहिये यह जो चित्तकी वृत्तियां हैं सो तो जैसे ध्वजाके वस्त्रका अग्रभाग सर्वदाहि वायुकरके चलायमान होवे है और जैसे अग्निकी शिखा सर्वदाहि ऊर्ध्वकूं क्षणक्षणमें चलायमान होवे है तथा जैसे (तडित्प्रभा) कहिये वर्षा ऋतुमें आकाशविषे विजलीकी चमक क्षणक्षणमें चलायमान होवे है और जैसे (नदीरय) कहिये गंगा-दिक महानदीका वेग सर्वदा चलायमान होवे है तथा जैसे (अश्वत्थदल) कहिये पीपलवृक्षका पत्र सर्वदा चलायमान होवे है और जैसे (अलिः) कहिये भ्रमर एकपुष्पसें दूसरेपर दूसरेसें तिसरेपर सर्वदा चलायमान होवे है तैसेहि (चंचला) कहिये यह मेरे चित्तकी वृत्तियां सर्वदाहि चलायमान रहती हैं सो हे भगवन्, इन चित्तकी वृत्तियोंका (कथं) कहिये किस उपायकरके निरोध होय सके है सो कृपा-करके मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ९५ ॥ गुरु

इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके जब गुरु तिसका सहित दृष्टांतके उत्तर करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

यथा प्रमत्ता वनदंतिनः क्वचित्
प्रयांत्युपायेन विना न निग्रहम् ॥
तथैव योगेन विना न वृत्तयो
निरोधनं यांति ततस्तमभ्यसेत् ॥ ९६ ॥

टीका—यथेति ॥ हे शिष्य, (यथा प्रमत्ताः) कहिके जैसे मदकरके प्रमत्त भये विन्ध्याचलादिक पर्वतोंके वनोविषे विचरनेहारे दुष्ट हस्ती—खात अंकुशादिक उपाय करनेसें विना कदाचित् निग्रहकूं नहि प्राप्त होते हैं तैसेहि संसाररूप पर्वतके विषयरूप वनविषे विचरनेहारी जो दुष्ट चित्तवृत्तियां हैं सो (योगेन विना) कहिये योगाभ्यासके विना निरोधकूं नहि प्राप्त होवे हैं ॥ यह वार्ता योगवासिष्ठके निर्वाण प्रकरणमेंभी कथन करी है "अंकुशेन विना मत्तो यथा दुष्टमतंगजः ॥ विजेतुं शक्यते नैव तथा युक्त्या विना मनः" अर्थ—हे रामचन्द्र, जैसे मत्त भया दुष्ट हस्ती अंकुशके विना वशीभूत नहि होवे है तैसेहि यह

विषयभोगरूप मदकरके मत्त भया मन योगयुक्तिसें विना जय नहि किया जावे है इति ॥ यातें हे शिष्य, जिस पुरुषको चित्तकी वृत्तियोंका निरोध करना होवे तो सो (तमभ्यसेत्) कहिये तिस योगकाहि अभ्यास करे इति ॥ ९६ ॥ इस प्रकारसें वृत्तियोंके निरोध करनेमें योगाभ्यासकी मुख्य हेतुता श्रवण करके अब तिस योगके स्वरूप जाननेके अर्थ पुनः शिष्य प्रश्न करे है ॥

शिष्य उवाच ॥

किं लक्षणं तस्य वदंति योगिनो
योगस्य चांगानि कियंति संति वै
निर्विघ्नमायाति कथं च सिद्धतां
योगीन्द्र मे ब्रूहि समासतः स्फुटम् ॥९७॥

टीका—किं लक्षणमिति ॥ हे योगीन्द्र, कहिये सर्व योगियोंके राजा अर्थात् सर्व योगविद्याके जानने-हारोंमें श्रेष्ठ गुरो, अपने कहा कि योगाभ्यासके विना चित्तवृत्तियोंका निरोध नहि होवे है सो (तस्य) कहिये तिस योगका योगी पुरुष क्या लक्षण कथन करते हैं और तिसके (अंगानि कियंति संति) कहिये कितने अंग हैं तथा सो योग (कथं) कहिये किस उपाय करके शीघ्रहि निर्विघ्न सिद्धिकूं प्राप्त होवे है सो

हे भगवन्, यह सर्व वार्ता कृपा करके (समासतः) कहिये संक्षेपसें मेरेप्रति कथन करो इति ॥ ९७ ॥ इस प्रकारसें योगविषयक शिष्यके तीन प्रश्न श्रवण करके अब तिनका एकहि श्लोककरके गुरु उत्तर कथन करे है ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

संत्यज्य संकल्पविकल्पजालकं
यत्र स्थितिं याति मनोऽन्तरात्मनि ॥
योगं तमष्टांगमवेहि स ध्रुवं
वैराग्यतोऽभ्यासबलाच्च सिद्ध्यति ॥९८॥

टीका—संत्यज्येति ॥ हे शिष्य, (यत्र) कहिये जिस कालमें यमनियमादिक योगके अंगोंके दीर्घ कालपर्यंत अभ्यास करनेसें यह संकल्पविकल्पात्मक जो मन है सो अपने सर्वहि संकल्पविकल्पोंकूं संत्यज्य कहिये परित्याग करके अंतरात्मा जो ज्योतिःस्वरूप अपना प्रत्यगात्मा है तिसविषे निश्चल स्थितिकूं प्राप्त होवे है तिसकूंहि तूं योग जान अर्थात् सर्व संकल्पोंका परित्याग करके अंतरात्माविषे जो मनकी एकाग्र स्थिति होनी है सोई योगका लक्षण है ॥ तथा यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिऋषिनेंभी प्रतिपादन करी है "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" अर्थ—प्रमाणविपर्ययादिक

जो चित्तकी वृत्तियां हैं तिनका अभ्यास करके जो निरोध करना है तिसहीका नाम योग है इति ॥ इस उक्त सूत्रविषे पतंजलिने सर्व शब्दका ग्रहण नहि किया है यातें किंचित् वृत्तियोंके सहित जो सविकल्प-समाधि है सोभी योग कहिये है ॥ और जिसमें सर्वहि वृत्तियोंका सर्व तरफसें निरोध हो जावे है सो निर्वि-कल्पसमाधि कहिये है सोई योगशब्दका मुख्य अर्थ है ॥ इस प्रकारसें प्रथम प्रश्नका उत्तर कथन करके अब तिस योगके कितने अंग हैं यह जो शिष्यका द्वितीय प्रश्न है तिसका उत्तर कथन करे हैं (तमष्टांगं) कहिये हे शिष्य, तिस योगकूं तुं अष्ट अंगोंवाला जान सो अष्ट अंगभी पतंजलिमुनिनेहि कथन किये हैं यम-नियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावं-गानि" अर्थ—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्या-हार, धारणा, ध्यान, और समाधि इस प्रकारसें योगके अष्ट अंग हैं इति ॥ तिनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, शौच, आर्जव, क्षमा, धैर्य, मिताहार, दया, इस भेदसें यम दश प्रकारके हैं ॥ तथा जप, तप, दान, वेदांतश्रवण, आस्तिक्य, व्रत, ईश्वरपूजन, संतोष, श्रद्धा, लज्जा, इस भेदसें नियमभी दश प्रकारके हैं ॥

तथा आसन सर्व मिलके चौरासी लक्ष हैं तिनमेंसें चौरासी मुख्य हैं तिनमेंभी पुनः पद्मासन और सिद्धासन यह दोनोंहि मुख्य हैं तिन दोनोंमेंसेंभी पुनः सिद्धासनकी प्रधानता है ॥ तथा रेचक, पूरक, कुंभक इस भेदसें प्राणयाम तीन प्रकारके हैं ॥ तिनमें उदरगत वायुका वामनासापुटसें जो बाहिर परित्याग करना है तिसका नाम रेचक है और पुनः तिस बाह्यगत वायुका नासापुट अथवा मुखसें जो अभ्यंतर आकर्षण करना है तिसका नाम पूरक है तथा बाह्यसें आकर्षण किये हुये प्राणवायुका यथाशक्ति जो उदरमें स्तंभन करना है तिसका नाम कुंभक है ॥ तथा चक्षु आदिक इन्द्रियोंकूं स्वस्वविषयोंसें निवारण करके जो चित्तके अनुसार स्थापन करना है तिसकूं प्रत्याहार कहते हैं ॥ तथा जिह्वाका अग्रभाग नासाका अग्रभाग भ्रुवोंका मध्यभाग नाभिचक्र इत्यादिक स्थलोंविषे अन्य विषयोंसें निवारण करके चित्तकूं पुनः पुनः जो स्थापना है सो धारणा कहिये है" तथा तिस धारणावाले देशमेंहि चित्तवृत्तिका जो तैलधाराकी न्यांई सदृश प्रवाह होना है सो ध्यान कहिये है ॥ तथा तिसहि ध्यानवाले देशमें ध्याता ध्यान ध्येयरूप

त्रिपुटीके विस्मरणपूर्वक केवल ध्येय वस्तुके आकारसेंहि जो चित्तकी स्थिति होनी है तिसका नाम समाधि है ॥ यह योगके अष्टअंगोंके संक्षेपसें लक्षण हैं ॥ सो इन सर्वके हेतु लक्षण और फल (योगकल्पद्रुम वा योगरसायन) नामक पुस्तकविषे हमने विस्तार-पूर्वक वर्णन किये हैं यातें जिस पुरुषकों विशेष देख-नेकी वांछा होवे सो तिनमेंसें देख लेवे यहां ग्रंथके विस्तारके भयसें नहि लिखे हैं ॥ इस प्रकारसें द्वितीय प्रश्नका उत्तर कथन करके अब सो योग किस उपा-यसें निर्विघ्न सिद्धिकूं प्राप्त होवे है यह जो शिष्यका तीसरा प्रश्न है तिसका उत्तर कथन करे हैं (वैराग्य-तोभ्यासबलाच्च) कहिये हे शिष्य, सो योग (ध्रुवं) कहिये निश्चयकरके वैराग्य और अभ्यास इन दोनों-करके सिद्धिकूं प्राप्त होवे है यह वार्ताभी पतंजलिमुनिने कथन करी है "अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः" अर्थ— अभ्यास और वैराग्यकरके तिन चित्तवृत्तियोंका निरोध होवे है इति ॥ तथा भगवत्गीतामेंभी कहा है "अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते" अर्थ— हे अर्जुन, यद्यपि चित्त परम चंचल है तथापि अभ्यास और वैराग्यकरके तिसका ग्रहण होवे है इति ॥

तिनमें इस लोक तथा परलोकके शब्दादिक विषयोंकी अभिलाषा और तिसके स्त्रीधनादिक साधनोंका जो परित्याग करना है तिसका नाम वैराग्य है। और योगकी सिद्धिके अर्थ यमनियमासनप्राणायामादिक योगके अंगोंका जो वारंवार आवर्तन करना है तिसका नाम अभ्यास है ॥ तथा (अभ्यासबलाच्च) मूल श्लोकके इस चतुर्थ पादविषे जो चकार है तिसकरके ईश्वरका आराधनभी योगकी निर्विघ्न सिद्धिविषे मुख्य हेतु जान लेना। यह वार्ताभी पतंजलिनेहि कथन करी है "समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्"- अर्थ ईश्वरके एकाग्रचित्त होयकरके आराधन करनेसें समाधिकी सिद्धि होवे है इति ॥ और जो ग्रंथके आदिमें द्वितीय श्लोककी व्याख्याविषे कथन करी आये हैं कि कलियुगमें योगकी सिद्धि नहि होवे है सो तो उद्दालक वीतहव्य वसिष्ठादिकोंकी न्याई सर्व सिद्धियोंकी प्राप्तिका हेतु जो दीर्घ काल समाधि- रूप योग है तिस विषयकहि निषेध जानना और जो केवल चित्तवृत्तिके निरोधमात्रका उपयोगी योगाभ्यास है तिसकी तो प्रयत्न करनेसें इस काल- मेंभी सिद्धि संभवे है यातें पूर्वोक्तके साथ इस

वाक्यका किंचित्भी विरोध नहि है ॥ इति ॥ ९८ ॥

इस प्रकारसें सर्व अंगोंके सहित योगका लक्षण और तिसकी सिद्धिके साधन श्रवण करके अब योगकी सिद्धि प्रारब्धकर्मकरके स्वतः हि होवे है किंवा पुरुषार्थ करनेसे होवे है इस प्रकारसें संशयकूं प्राप्त भया शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

किं पौरुषेणाभिमतं स्वकर्मणा
पूर्वार्जितेनोत जनैरवाप्यते ॥
वस्त्वेतयोः किंच बलिष्ठमुच्यते
सर्वार्थविद्ब्रूहि यदेव निश्चितम् ॥ ९९ ॥

टीका—किं पौरुषेणेति ॥ हे (सर्वार्थवित्) कहिये शास्त्रोक्त सर्व पदार्थोंके जाननेहारे गुरो इस लोकमें जो जो (अभिमतं वस्तु) कहिये मनोवांछित वस्तु पुरुषकूं प्राप्त होवे है सो सो (पौरुषेण) कहिये अपने पुरुषार्थ करनेसें प्राप्त होवे है किंवा पूर्वार्जित जो प्रारब्धकर्म है तिसकरके प्राप्त होवे है तथा (एतयोः) कहिये पुरुषार्थ और प्रारब्धकर्म इन दोनोंमेंसें कौनसा बलवान् कहिये है अर्थात् पुरुषार्थ बलवान् है किंवा प्रारब्धकर्म बलिष्ठ है सो हे भगवन्, इनमें जो वार्ता

निश्चित होवे सोई मेरेप्रति करुणा करके कथन करो इति ॥ ९९ ॥ इस प्रकारसें शिष्यके दो प्रश्न श्रवण करके अब तिनका सहित दृष्टांतके एकहि श्लोकसें गुरु उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

नैकेन पुंसा तनयः क्वचिद्यथा
नैवैकया वांगनयापि जन्यते ॥
संयोगमेवात्र तथैव कारणं
विद्धि त्वमाद्यं च बलिष्ठमेतयोः ॥१००॥

टीका—नैकेनेति ॥ हे शिष्य, इस लोकविषे प्रत्यक्षहि जैसे एकला पुरुष किसी कालमेंभी पुत्रकूं नहि उत्पन्न करसके है तथा (अंगनयापि) कहिये अंगना जो स्त्री है सोभी एकली पुत्रके उत्पन्न करनेमें समर्थ नहि होवे है ॥ तैसेहि प्रारब्धकर्मकेविना एकले पुरुषार्थसेंहि किसी वस्तुकी प्राप्ति नहि होवे है तथा पुरुषार्थसेंविना एकले प्रारब्धकर्मसें भी किसी वस्तुकी प्राप्ति नहि होवे है ॥ सो हे शिष्य, जैसे दृष्टांतमें पुरुष और स्त्री दोनोंके परस्पर संयोग होनेतेंहि पुत्रकी उत्पत्ति होवे है तैसेहि दार्ष्टांतमेंभी पुरुषार्थ और प्रारब्धके संयोगकूंहि सर्व वस्तुवोंकी प्राप्तिविषे

तूं करण जान ॥ और जो तुंने प्रश्न किया की इन दोनोंमेंसें बलवान् कौन है तहां श्रवण कर (आद्यं च बलिष्ठमेतयोः) कहिये हे शिष्य, जैसे दृष्टांतमें पुरुष और स्त्री इन दोनोंमेंसें पुरुष बलवान् होवे है तैसेहि दार्ष्टांतविषेभी प्रारब्धकर्मसें पुरुषार्थ बलवान् है काहेतें जैसे स्त्रीकेबिनाभी केवल अपने वीर्यसेंहि पूर्व ऋषिलोकोंनें पुत्र उत्पन्न किये हैं जैसे कि व्यासजीका गंगातटपर अप्सरोंके नग्न देखनेसें होम करनेकी लकडियोंपर वीर्य पतित हो गया तो पश्चात् व्यासजीने तिन लकडियोंकूं मथन करके शुकदेवजीकूं उत्पन्न[1] किया ॥ तैसेहि भारद्वाजके वीर्यके द्रोणमें पतित होनेतें द्रोणाचार्य उत्पन्न भये इत्यादिक अनेकहि इतिहास महाभारत भागवतादिक पुराणोंविषे प्रसिद्ध हैं ॥ तैसेहि प्रारब्धकर्मके विनाभी केवल पुरुषार्थके बलसेंहि विश्वामित्रने ब्राह्मणपना और नंदीगणने अमरपणा ध्रुवने अचलपणा संपादन किया है इत्यादिक इतिहासभी पुराणोंविषे प्रसिद्ध हैं ॥ तात्पर्य यह है कि प्रारब्ध और पुरुषार्थ यह दोनों

१ यद्यपि शुकदेवजीकी उत्पत्ति अन्यत्र, अन्य प्रकारसेंभी श्रवणमें आवे है तथापि महाभारतमें ऐसेहि लिखा है ॥

अनादि होनेतें बीजांकुरवत् परस्पर कार्यकारण भाव वाले हैं सो तिनमेंसें जो बली होवे है तिसहीकी जय होवे है ॥ यह वार्ता योगवासिष्ठमेंभी कथन करी है "द्वौ हुडाविव युद्ध्यते पुरुषार्थौ समासमौ ॥ प्राक्तनश्चैहिकश्चैव शाम्यत्यत्राल्पवीर्यवान्" अर्थ—हे रामचंद्र, जैसे दो घेटा परस्पर युद्ध करते हैं तो तिनमें जो बली होवे है तिसहिकी जय होवे है तैसेहि पूर्वकृत प्रारब्धकर्म और यहांका पुरुषार्थ इन दोनोंमेंसें जो बली होवे है तिसकीहि जय होवे है इसी कारणसें इसलोकविषे केचित् कार्य बहुत प्रयत्न करनेंसेंभी अंतमें सिद्धि नहि होवे है तो तिनमें पूर्वका प्रारब्ध कर्महि बलवान् प्रतिबंधक जानना चाहिये और केचित् कार्य यथोक्त प्रयत्न करनेंसें शीघ्रहि सिद्ध हो जावे हैं तो तिनमें यहांका पुरुषार्थ बलवान् जानना चाहिये ॥ सो यद्यपि यह उक्त वसिष्ठजीका कथन यथार्थहि है पुरुषार्थकी सर्वत्र जय होवे है, और जो कार्य यहां पुरुषार्थ करनेसेंभी सिद्ध नहि होवे तो अबी तिनमें अपने पुरुषार्थकीहि न्यूनता जाननी चाहिये ॥ यह वार्ताभी वसिष्ठजीनेहि कथन करी है "न तदस्ति जगत्कोशे

शुभकर्मानुपातिना ॥ यत्पौरुषेण शुद्धेन न समासाद्यते जनैः" अर्थ—हे रामचन्द्र, ऐसी वस्तु इस जगत्-मंडलमें कोई नहि है कि जो शास्त्रोक्त शुभ पुरुषार्थ करनेसें पुरुषको नहि प्राप्त होय सके है इति ॥ किंच जो पुरुषार्थकी प्रधानता नहि होती तो अपनी स्वाभाविक स्थितिसें प्रयत्न करनेसें किसी पुरुषकी कदाचित्भी उन्नति नहि होती और होती देखनेमें आवे है तथा पुरुषार्थके प्रतिपादन जो वेद और शास्त्र हैं सो सर्वहि व्यर्थ हो जावेंगे यातें प्रथमोक्त रीतिसें सर्वथा पुरुषार्थ बलिष्ठ है यह वार्ता सिद्ध भई इति ॥ १०० ॥ इस प्रकार प्रसंगसें जीवन्मुक्तिके उपयोगी योगाभ्यासका लक्षण और तिसके अंग तथा तिसकी सिद्धिविषे पुरुषार्थकी मुख्यता श्रवण करके अब पुनः विशेष बोधके अर्थ प्रकृत वेदांत विषयमेंहि शिष्य प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

सर्वत्रगं वेदवचोभिरुच्यते
ब्रह्मोपलादौ तु कथं न लक्ष्यते ॥
अस्माच्छरीरेषु यथैतदंजसा
सर्वज्ञ मे ब्रूहि विबोधवृद्धये ॥ १०१ ॥

टीका—सर्वत्रगमिति ॥ हे सर्वज्ञ कहिये सर्वशास्त्र-प्रतिपादित पदार्थोंके करामलकवत् स्फुट जाननेहारे गुरो, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादिक वेदके वाक्यों-विषे ब्रह्म (सर्वत्रगं) कहिये सर्वत्र व्यापक कथन किया है सो जो ब्रह्म सर्वत्र एकरस बराबर परिपूर्ण है तो (अस्मच्छरीरेषु) कहिये जैसे हमारे मनुष्य पशु पक्षी आदिकोंके शरीरोंविषे चेतनशक्तिद्वारा ब्रह्मका लक्षणावृत्तिसें भान होवे है तैसे (उपलादिषु) कहिये निश्चेष्ट जो शिला भित्ति आदिक जड पदार्थ हैं तिनकेविषे ब्रह्मकी प्रतीति काहेतें नहि होवे है सो हे भगवन्, (एतदंजसा) कहिये यह वार्ता जिस प्रकारसें मेरी बुद्धिमें शीघ्रहि आरूढ हो जावे तैसे स्फुट करके बोधकी वृद्धिके अर्थ मेरे प्रति कृपा करके कथन करो इति ॥ १०१ ॥ इस प्रकारसें शिष्यका प्रश्न श्रवण करके अब सहित दृष्टांतके गुरु तिसका उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

सामान्यतः सर्वगतापि भानुभा
यद्वद्विशेषेण विभाति दर्पणे ॥

ब्रह्मापि सर्वत्रगतं मतौ स्फुटं
तद्वद्धि भातीत्यनुभूयते बुधैः ॥ १०२ ॥

टीका—सामान्यत इति ॥ हे शिष्य, (यद्वत्) कहिये जैसे मध्याह्नकालके सूर्यकी प्रभा यद्यपि समानभावसें सर्वत्रहि एक जैसी प्रसृत होवे है तथापि (विशेषेण) कहिये अत्यंत स्वच्छ पदार्थ जो दर्पणादिक हैं तिनकेविषेहि विशेषकरके प्रतिबिंबित होवे है अन्य काष्ठमृत्तिकादिक मलिन पदार्थोंविषे नहि (तद्वत्) कहिये तैसेहि यद्यपि ब्रह्मभी सर्वत्र जगत्के बाहिर भीतर एकरस आकाशकी न्यांई परिपूर्ण है तथापि पंचमहाभूतोंके सत्त्वअंशका कार्य जो अत्यंत स्वच्छ पदार्थ (मति) कहिये बुद्धि अर्थात् अंतःकरण है तिसकेविषेहि विशेषकरके प्रतिबिंबित होवे है शिला-भित्ति आदिकोंविषे नहि काहेतें पंचमहाभूतोंके तमोअंशके कार्य होनेंतें शिला आदिक जड पदार्थ अत्यंत मलिन हैं इस कारणसें सो ब्रह्मका प्रति-बिंब ग्रहण नहि कर सकते ॥ यद्यपि अस्मदादि-कोंके जो स्थूल शरीर हैं सोभी शिलादिकोंकी न्यांई स्वतः जडहि हैं तथापि तिनमें अंतःकरणकी विशेषता है सो अस्मदादिकोंके शरीरोंविषे ब्रह्मके

प्रतिबिंबकरके संयुक्त अंतःकरण है यातें तिनमें गमनागमनादि क्रियाद्वारा तिस ब्रह्मकी चेतनता प्रतीत होवे है और शिलादिकोंमें अंतःकरणके अभाव होनेतें गमनागमनादि क्रिया नहि होवे है यातें तिनमें ब्रह्मकी चेतनता प्रतीत नहि होवे है परंतु ब्रह्मकी व्यापकता दोनोंमें समान है तिसमें किंचित् मात्रभी न्यूनाधिकभाव नहि यह वार्ता पंचदशीमेंभी कथन करी है "चेतनाचेतनभिदा कूटस्थात्मकृता नहि ॥ किंतु बुद्धिकृताभासकृतैवेत्यवगम्यताम्" अर्थ—शिलादिक और शरीरादिकोंमें जो चेतन और अचेतनपणेका भेद प्रतीत होवे है सो कूटस्थात्मा जो ब्रह्म है तिसका किया हुया नहि है किंतु केवल चेतनके आभास करके संयुक्त जो बुद्धि अर्थात् अंतःकरण है तिसकाहि कियाहुया है ब्रह्म तो सर्वत्र एकरस समान व्यापक है इति ॥ तथा योगवासिष्ठमेंभी कहा है "आकाशोपलकुड्यादौ सर्वत्रात्मदशा स्थिता ॥ प्रतिबिंबमिवादर्शे चित्त एवात्र दृश्यते" अर्थ—हे रामचन्द्र, आकाश, पत्थर भित्ति आदिकोंमें सर्वत्रहि आत्माकी चेतनता स्थित है परंतु तिसका प्रतिबिंब केवल चित्तमेंहि होवे है जैसे

सूर्यके प्रकाशका दर्पणमें होवे है इति ॥ सो हे शिष्य, यह उक्त वार्ता केवल शास्त्रसेंहि सिद्ध नहि है किंतु (अनुभूयते बुधैः) कहिये अंतःकरणमेंहि चिदाभासरूपसें ब्रह्म प्रतिबिंबित है इस वार्ताका बुध जो तत्त्वदर्शी ज्ञानी लोक हैं सो वृत्तिव्याप्तिरूपसें अनुभव करते हैं यह वार्ता अथर्ववेदकी मुंडकउपनिषत्‌मेंभी कथन करी है "दूरात्सुदूरे तदिहांतिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायां" अर्थ—सो ब्रह्म अज्ञानी लोकोंके लिये दूरसेभी अत्यंत दूर है और ज्ञानी लोकोंके लिये अंतिके कहिये अतिसमीपहि है काहेतें ज्ञानरूप नेत्रोंसें देखनेहारे तत्त्वदर्शियोंको अपनी बुद्धिरूप गुहामेंहि स्थित भया ब्रह्म दृष्टिमें अर्थात् अनुभवमें आवे है इति ॥ १०२ ॥ इस प्रकारसें ब्रह्मकी सर्वव्यापकता निर्णय श्रवण करके अब कहिं वेदविषे "न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः" अर्थ—कर्मकरके और प्रजाकरके तथा धनकरके मुक्ति नहि होवे है किंतु केवल त्यागकरके हि केचित् संन्यासी लोक मोक्षकूं प्राप्त होते भये हैं इति ॥ इत्यादि वाक्योंकरके केवल संन्याससेंहि मोक्षपदकी प्राप्ति कथन करी है तथा पुनः कहिं

"यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्" अर्थ—जबपर्यंत यह पुरुष जीवे तबपर्यंत अग्निहोत्रहि करता रहे इति ॥ इत्यादिक वाक्योंसे सर्वदा गृहविषे रहकरके कर्म करनेकाहि विधान किया है सो तिन दोनों पक्षोंमेंसें कौनसा श्रेष्ठ है इस प्रकारकी शंकाकरके युक्त भया शिष्य पुनः प्रश्न करे है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

परिव्रजन्नेव जनो विमुच्यते
गृहेपि तिष्ठन्किमु वा दयोदधे ॥
तयोश्च किं तत्र विमोक्षकारणं
वदैतदाम्नायवचोऽनुरोधतः ॥ १०३ ॥

टीका—परिव्रजन्निति ॥ हे (दयोदधे) कहिये स्वाभाविक दयाके समुद्र गुरो, (परिव्रजन्नेव) कहिये गृहादिकोंका परित्याग करके संन्यासाश्रमके ग्रहण करनेसेंहि नियमकरके पुरुषकी मुक्ति होवे है किंवा (गृहेपि तिष्ठन्) कहिये स्त्रीपुत्रादिक सर्व भोगके साधनोंकरके युक्त अपने गृहाश्रमविषेहि सर्वदा स्थित भये पुरुषकीभी मुक्ति होय जावे है ॥ तथा (तत्र) कहिये तहां संन्यासाश्रम और गृहस्थाश्रममें तिन दोनोंकूं कौनसा साधन मोक्षपदके देनेहारा होवे है

अर्थात् मुक्त होनेके योग्य जो संन्यासी और गृहस्थी है तिन दोनोंके किस प्रकारके आचरण होवे हैं ॥ सो यह सर्व वार्ता (आम्नायवचोऽनुरोधतः) कहिये वेदके वचनोंके अनुसार मेरेप्रति कृपाकरके कथन करो इति ॥ १०३ ॥ इस प्रकारसें शिष्यके दो प्रश्न श्रवण करके अब तीन श्लोकोंकरके क्रमसें तिनका गुरु उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

विशेषतो न्यस्तगृहो विमुच्यते
कचिद्गृहस्थोपि च पूर्वयत्नतः ॥
न चेह कश्चिन्नियमोस्ति पक्षिणोऽ-
भवन्मृगाश्चापि यतो विवेकिनः ॥ १०४ ॥

टीका—विशेपत इति ॥ हे शिष्य, विशेषकरके तो (न्यस्तगृहो) कहिये जिस पुरुषने गृहादिकोंका परित्याग करके संन्यासका ग्रहण किया है सोई मोक्षपदकूं प्राप्त होवे है काहेतें जो संन्यासग्रहणके प्रथम ज्ञानकी प्राप्ति नहि होवे है तो पश्चात् निश्चित होय करके ब्रह्मनिष्ठ गुरुके मुखसें वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकरके शीघ्रहि ज्ञानकी प्राप्ति हो जावे है और जो प्रथम गृहविषेहि ज्ञानकी प्राप्ति होवे है तो पश्चात्

संन्यासग्रहण करनेसें निर्विघ्नहि ज्ञानकी दृढताद्वारा जीवन्मुक्तिकी सिद्धि होवे है इस कारणसें संन्यासी-पुरुष विशेषकरके मोक्षकूं प्राप्त होवे हैं ॥ यह वार्ता अथर्ववेदकी मुंडकउपनिषत्‌मेंभी लिखी है "वेदांत-विज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ॥ ते ब्रह्मलोकेषु परांतकाले परामृताः परिमुच्यंति सर्वे" अर्थ—वेदांतशास्त्रप्रतिपादित ज्ञानके दृढ निश्चय होनेतें संन्यासाश्रमके ग्रहण करनेसें शुद्धांतःकरणवाले जो (यतयः) कहिये संन्यासी लोक हैं सो सर्वहि शरीरपातके अनंतर ब्रह्मरूप जो लोक है तिसमें मुक्तस्वरूप हुये कैवल्यमोक्षकूं प्राप्त होवे हैं इति, तथा मनुस्मृतिमेंभी कहा है "अनेन विधिना सर्वा-स्त्यक्त्वा संगान् शनैःशनैः ॥ सर्वद्वंद्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते" अर्थ—इस प्रकारसें विधिपूर्वक संन्यासके ग्रहणद्वारा शनैःशनै सर्व संगोंका परित्याग करके देहके अंतकालमें शीतोष्णादिक सर्व द्वंद्वोंसें रहित भया ज्ञानी पुरुष ब्रह्ममेंहि स्थित होवे है अर्थात् विदेहकैवल्यमोक्षकूं प्राप्त होवे है इति ॥ सो इत्यादिक श्रुतिस्मृतियोंविषे संन्यासी पुरुषकोहि विशेषकरके मोक्षपदकी प्राप्ति प्रतिपादन करी है ॥ सो यद्यपि

दंडादि लिंगधारणपूर्वक संन्यासविषे विशेषकरके ब्राह्मणकाहि मुख्याधिकार है और कचित् पुराणोंविषे वैदिक संस्कारयुक्त क्षत्रिय और वैश्यकाभी अधिकार कथन किया है तथापि लिंगसें विना केवल त्यागरूप संन्यासविषे तो चारों वर्णोंकाहि अधिकार है काहेतें सुलभा गार्गी आदिक स्त्रियां और विदुरादि शूद्रभी संन्यासी पुराणोंमें लिखे हैं ॥ तथा (कचित् गृहस्थोपि) कहिये हे शिष्य, पूर्वजन्मविषे अनुष्ठान किये निष्काम कर्मरूप प्रयत्नसें किसी कालमें कोई गृहस्थ पुरुषभी वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकरके ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा मुक्त हो जावे हैं जैसे कि राजा जनक, प्रतर्दन, अजातशत्रु आदिक पूर्व होते भये हैं ॥ किंच हे शिष्य (न चेह कश्चिन्नियमोस्ति) कहिये इस मोक्षपदकी प्राप्तिविषे संन्यासीकीहि मुक्ति होवे है दूसरेकी नहि अथवा ब्राह्मणकीहि मोक्ष होवे है अन्य जातिवालेकी नहि इत्यादि कोई नियम नहि है काहेतें (यतो) कहिये जिस कारणसें (पक्षिणो मृगाश्च) कहिये गरुड, काक भुशुंड, संपाति, जटायु आदिक पक्षी और हनुमान, जांबवान्, नंदीगणादिक पशुभी ज्ञानसंपन्न जीवन्मुक्त पूर्व होते भये हैं ॥ यह वार्ता

पुराणोंविषे प्रसिद्धहि है इति ॥ १०४ ॥ इस प्रकारसें प्रथम प्रश्नका उत्तर कथन करके अब संन्यासी और गृहस्थीके किस प्रकारके आचरण होवे हैं यह जो शिष्यका द्वितीय प्रश्न है तिसका द्विश्लोकोंकरके उत्तर कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

शवोपमं देहमिमं विलोक्य-
न्नटेदिमां यस्तु धरां गतस्पृहः ॥
असक्तचेताः समदर्शनः क्षमी
शुचिर्दयालुः स विमुच्यते यतिः ॥१०५॥

टीका—शवोपममिति ॥ हे शिष्य, (यस्तु) कहिये जो पुरुष संन्यासग्रहण करनेतें अनंतर (शवोपमं देहमिमं कहिये इस अपने शरीरकूं शवके समान देखता है अर्थात् जैसे शवविषे किसीकी प्रीति नहि होवे है तैसेहि शरीरविषे प्रीति नहि करे है अर्थात् शरीरके शीतोष्णादिक द्वंद्वोंकी निवृत्तिके अर्थभी विशेष-करके प्रयत्न नहि करे है ॥ तथा यह वार्ता परम-हंसउपनिषत्‌मेंभी लिखी है "स्ववपुः कुणपमिव दृश्यते यतस्तद्वपुरपध्वस्तं" अर्थ—ज्ञान होनेके अनंतर आत्म-स्वरूपविषे दृढाभ्यास होनेतें परमहंस संन्यासी पुरुष

अपने शरीरकूं मुरदेकी न्याई देखता है काहेतें जिस कारणतें ज्ञानके प्रभावसें तिस शरीरकूं मृगतृष्णाके जलकी न्यांई कल्पित जाने है इति ॥ अर्थात् शरीरके अनुकूल और प्रतिकूल व्यवहारमें चित्तविषे हर्ष शोक नहि मानता है जेसे कि जडभरत, दत्तात्रेय, वामदेवादिकोंने नहि माने हैं ॥ तथा (अटेदिमां धरां) कहिये इस पृथिवीका सर्वदा अटन करे है ॥ यह वार्ताभी अथर्ववेदकी कठश्रुतिउपनिषत्में कथन करी है ॥ कृशी भूत्वा ग्रामे एकरात्रं नगरे पंचरात्रं चतुरो मासान् वार्षिकान् ग्रामे वा नगरे वापि वसेत्,, अर्थ—संन्यासीको चहिये कि चान्द्रायणादिक व्रतोंसें शरीरकूं कृश करके पश्चात् ग्रामविषे एक रात्रि और नगरमें पंचरात्रिपर्यंत वास करे काहेतें एकत्र अधिक निवास करनेतें किसीसें राग किसीसें द्वेष इत्यादि अनेक दोषोंकी उत्पत्ति होवे है और वार्षिकान् कहिये वर्षाऋतुके चार महीनापर्यंत तो ग्राम अथवा नगरविषे एकहि स्थानमें निवास करनेमेंभी कोई दोष नहि है किंतु चलनेसें दोष है ॥ और काशीआदि तीर्थोंमें तो सर्वदाहि निवास करनेमेंभी दोष नहि है तथा शरीरमें रोग और योगाभ्यासादिक निमित्त होने-

तैंभी सर्वदा एकत्र निवासमें दोष नहि है ॥ तथा (गतस्पृहः) कहिये जो एकवार परित्याग किये हुये स्त्रीधनादिक पदार्थोंमें पुनः तिनकी स्पृहा कहिये अभिलाषा नहि करे है काहेतें प्रथम प्रैषमंत्रादिकोंसें विधिपूर्वक त्याग किये स्त्रीआदिकोंके पुनः ग्रहण करनेतें महान् दोषकी प्राप्ति होवे है ॥ तथा (असक्तचेताः) कहिये देशदेशांतरोंके विचरनेसें किसी देशविषे स्थान, भिक्षा, सन्मान, पूजा, वस्त्रादिकोंकी विशेष अनुकूलता देख करके तहां आसक्ति नहि करे है काहेतें तिनमें आसक्ति करनेतें पुनः बंधनकी प्राप्ति होवे है ॥ यह वार्ता मनुस्मृतिके षष्ठ अध्यायमेंभी कथन करी है ॥ "अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः ॥ अभिपूजितलाभाभ्यां यतिर्मुक्तोपि बध्यते" अर्थ—सन्मानपूर्वक पूजन और सुंदर वस्त्रादिकोंके लाभोंसें संन्यासी पुरुषको सर्वदाहि जुगुप्सा अर्थात् घृणा करनी चाहिये काहेतें पूजालाभादिकोंमें आसक्त होनेतें मुक्त भयाभी संन्यासी पुनः बंधनकूं प्राप्त होवे है इति ॥ तथा (समदर्शनः) कहिये जो अपने शत्रुमित्रादिकोंकूं बराबर दृष्टिकरके देखता है ॥ यह वार्ता गीतामें भगवान्

नेभी कथन करी है "विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ॥ शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः" अर्थ—विद्या और नम्रभाव करके युक्त ब्राह्मणमें और गौमें तथा हस्तिमें और श्वान तथा चांडालविषे जिस पुरुषकी समदृष्टि होवे है सोई पंडित अर्थात् तत्त्ववेत्ता संन्यासी कहिये है इति ॥ तथा (क्षमी) कहिये सजातीय संन्यासी अथवा अन्य दुष्ट पुरुष जो कोई निमित्तसें दंडादिसें ताडना अथवा दुष्ट वचन कथन करें तो तिन सर्वकोभी सहन करे है ॥ यह वार्ता श्रुतिमेंभी कथन करी है (वृक्ष इव तिष्ठासेत् छिद्यमानो न कुप्येत न कंपेत) अर्थ—संन्यासी पुरुषको वृक्षकी न्यांई स्थित होना चाहिये सो जैसे वृक्ष शस्त्रसें काटनेसें क्रोध नहि करे हैं और कंपायमानभी नहि होवे है तैसेहि संन्यासीकोभी होना चाहिये इति ॥ तथा मनुस्मृतिमेंभी कहा है "अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ॥ न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित्" अर्थ— संन्यासीको जो कोई दुष्ट वचन कथन करे तो तिसकूं सहन करे और अपनी वाणी अथवा शरीरकरके किसी पुरुषकाभी अपमान नहि करे तथा इस

क्षणभंगुर मनुष्यदेहके पीछे लागकरके किसीके साथ वैरभावभी नहि करे इति ॥ तथा (शुचिः) कहिये जो शास्त्रोक्त रीतिसें शरीरके बाह्य तथा अभ्यंतरसें मृत्तिका जल प्राणायामादिकोंकरके और मेध्य खानपानादि-कोंकरके सर्वदा पवित्र रहे है अर्थात् अपने तत्त्ववेत्ताके अभिमानकरके विहिताविहितविचारका परित्याग करके यथेष्टाचरण नहि करे है काहेतें यथेष्टाचरण करनेसें लोकविषे अत्यंत निंदित होवे है ॥ यह वार्ता पंचद-शीकारनेभी कथन करी है "शुनां तत्त्वदृशां चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे" अर्थ—जो तत्त्ववेत्ता ज्ञानीपुरुषभी शुभाशुभका परित्याग करके अपनी इच्छानुसार मांसादिक अपवित्र पदार्थोंका सेवन करेंगे तो विष्ठा-दिक अपवित्र भक्षण करनेहारे श्वानादिकोंका और तिन ज्ञानीपुरुषोंका क्या भेद होवेगा अर्थात् कुछभी नहि इति ॥ तथा (दयालुः) कहिये जो सर्वभूत-प्राणियोंपर स्वाभाविक दया करे है अर्थात् सर्व जीवोंकूं अपने समान जानकरके किसीकूंभी मन, वचन, कर्म करके दुःख नहि देवे है ॥ यह वार्ता जीवन्मुक्तिप्रकरणविषेभी कथन करी है "प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा ॥

आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वंति साधवः” अर्थ— जिस प्रकारसें अपनेकूं प्राण अत्यंत प्रिय हैं तैसेहि अन्य सर्व जीवोंकूंभी प्रिय हैं यातें इस प्रकारसें जान-करके साधुपुरुष अपने समान सर्व भूतप्राणियोंपर दया करते हैं इति ॥ सो हे शिष्य, यह संक्षेपसें संन्यासीके आचरण कथन किये हैं ॥ सो इन सर्व लक्षणोंकरके युक्त जो (यतिः) कहिये संन्यासी पुरुष है सो (विमुच्यते) कहिये शीघ्रहि निर्विघ्न मोक्षपदकूं प्राप्त होवे है ॥ यद्यपि पूर्वोक्त रीतिसें केवल ज्ञानसेंहि मोक्षकी प्राप्ति हो जावे है तथापि जैसे कोई रोगी पुरुषके रोग निवृत्त करनेहारी औषधिके भक्षण करतेभी पथ्य नहि रखनेसें सो औषधि रोगकी निवृत्ति करनेमें समर्थ नहि होवे हैं तैसेहि ज्ञानकी प्राप्ति होनेतेंभी पश्चात् जो पुरुष शास्त्रोक्त स्वस्वधर्मका आच-रण नहि करते है तो सो ज्ञान संशय और विपरीत-भावनाकरके युक्त भया जन्ममरणरूप संसाररोगकी निवृत्ति करनेमें समर्थ नहि होवे है ॥ यह वार्ता पराशरमुनिनेभी कथन करी है “मणिमंत्रौषधैर्वह्निः प्रदीप्तोऽपि यथेंधनम् ॥ प्रदग्धुं नैव शक्तः स्यात् प्रति-बद्धस्तथैव हिं ॥ ज्ञानाग्निरपि संजातः सुदीप्तः सुदृढोऽपि

च ॥ प्रदग्धुं नैव शक्तः स्यात् प्रतिबद्धस्तु कल्मषम्" अर्थ—जैसे मणि मंत्र औषधादिकोंकरके प्रतिबद्ध होनेतें अग्नि प्रदीप्त भयाभी इंधनके जलानेमें समर्थ नहि होवे है तैसेहि संशयविपरीतभावना दुष्टाचारादिकोंकरके प्रतिबद्ध होनेतें ज्ञानरूप अग्नि यद्यपि दृढ और अति प्रज्वलितभी उत्पन्न हो जावे तोभी सो पापोंके दग्ध करनेमें समर्थ नहि होवे है इति ॥ यातें हे शिष्य, ज्ञानके होनेतेंभी शरीरपातपर्यंत अवश्य हि शास्त्रोक्त स्वस्वधर्मका आचरण करना योग्य है इति ॥ १०५ ॥ इस प्रकारसें संन्यासीके धर्मोंका संक्षेपसें निरूपण करके अब गृहस्थके धर्म कथन करे हैं ।

॥ गुरुरुवाच ॥

यथाप्तितुष्टोऽनृतरागवर्जितः
स्वधर्मनिष्ठोऽतिथिपूजकः शुचिः
जितेन्द्रियो वृद्धजनानुगः क्षमी
विचारशीलश्च गृहेऽपि मुच्यते ॥ १०६ ॥

टीका—यथाप्तितुष्ट इति ॥ हे शिष्य, जो गृहस्थ (यथाप्तितुष्टः) कहिये अपने शास्त्रोक्त व्यवहारसें जो द्रव्यकी प्राप्ति होवे तिसहिमें संतोष अर्थात् तृप्ति माने है काहेतें संतोषके अभाव होनेतेंहि लोभकरके

युक्त भया पुरुष स्वधर्मका परित्याग करके नौकरी आदिक पराधीनतासें अत्यंत क्लेशकूं प्राप्त होवे हैं ॥ तथा यह वार्ता मनुस्मृतिमेंभी कथन करी है "संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ॥ संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः" अर्थ—सुखकी इच्छावान् पुरुषको परम संतोषमें स्थित होयकरके व्यवहारविषे तत्पर होना चाहिये काहेतें संतोषहि सर्वसुखोंका मूल है और तिसके विपरीत जो तृष्णा है सोई सर्वदुःखोंका मूल है इति ॥ यातें विवेकी पुरुषको सर्वदाहि अपनेसें गरीब और दुःखी पुरुषोंकी तरफ देख करके तथा पराधीनतादि क्लेशोंकी तरफ देखकरके अपने चित्तमें संतोष माननाहि योग्य है ॥ तथा अनृत जो असत्य भाषण है तिसकरकेभी रहित है काहेतें असत्य भाषण करनेके तुल्य दूसरा कोई पाप नहि है ॥ यह वार्ताभी मनुस्मृतिमेंहि कथन करी है "ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः ॥ मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा" अर्थ— जिस गतिकूं ब्रह्महत्या करनेहारे पुरुष प्राप्त होते हैं और जो गति स्त्री और बालकके मारनेहारेकी होवे है और जो गति मित्रसें द्रोह करनेहारे और कृतघ्न

पुरुषकी होवे है सोई गति राजदरबारादिक स्थलोंमें असत्य भाषण करनेहारे पुरुषकी होवे है इति ॥ और जिस स्थलमें किसी जिवके प्राणोंकी रक्षा होती होवे तो तहां एकवार असत्य भाषण करनेसेंभी दोष नहि होवे है किंतु उलटा धर्म होवे है यातें विवेकी पुरुषको सर्वत्र विचार करकेहि सत्य भाषण करना योग्य है ॥ तथा (रागवर्जितः) कहिये राग जो स्त्रीपुत्रादिकोंविषे अत्यंत प्रीति है तिसकरकेभी जो रहित है काहेतें स्त्रीआदिकोंमें अधिक स्नेह होनेतें तिनके लिये सुंदर सुंदर वस्त्र आभूषणादिकोंके संपादन करनेके अर्थ अधिक द्रव्यकी वांछा होनेतें संतोषका परित्याग करके अवश्य पराधीनतादि क्लेशोंकी प्राप्ती होवेगी यातें तिनमें चित्तसें अधिक राग नहि करना चाहिये ॥ यह वार्ता गीतामें भगवाननेभी कथन करी है "असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु" अर्थ—हे अर्जुन, मुमुक्षु पुरुषको पुत्र स्त्री गृहादिकोंमें आसक्ति और अत्यंत प्रेम नहि करना चहिये इति ॥ तथा जो (स्वधर्मनिष्ठः) कहिये सर्वदाहि अपने वर्णाश्रमके धर्मविषे निष्ठावान् है अर्थात् अपने धर्मसें विरुद्धाचरण करनेसें जो कभी अधिक

द्रव्यकी प्राप्तिभी होवे तो तिस कार्यकूं नहि करेहै ॥ और जो विपत्तिकालमें ब्राह्मणका अपने षट् कर्मोंकरके कुटुंबका पोषण नहि हो सके तो तिसको क्षत्रिय और वैश्यके कर्म करनेकीभी धर्मशास्त्रमें अनुज्ञा करी है यातें तिस कालमें दोष नहि है ॥ यहां स्वधर्मनिष्ठ-शब्दकरके वेदाध्ययन, संध्या, तर्पण, श्राद्ध, वैश्वदेवा-दिक जो द्विजातिपुरुषोंके नित्यनैमित्तिक धर्म हैं तिनमें तत्परताकाभी ग्रहण जान लेना ॥ तथा (अतिथिपूजकः) कहिये जो गृहविषे प्राप्त भये अतिथिकाभी यथाशक्ति अन्नजलादिकोंकरके सत्कार करे है काहेतें अतिथिके नहि पूजनेसे गृहस्थकी महा हानी होवे है ॥ यह वार्ताभी मनुस्मृतिमेंहि कथन करी है "अतिथिर्यद्गृहादेव भग्नाशो विनिवर्तते ॥ स दत्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति" अर्थ—जिस गृहस्थके गृहसें अतिथि निराश होय करके पीछे जावे है तो सो तिस गृहस्थके प्रति अपने पाप देकरके तिसके सर्व पुण्य लेकरके चला जावे है इति ॥ तथा (शुचिः) कहिये मांस भक्षण करना मदिरापान करना, किसीका उच्छिष्ट भोजना करना, बासी अन्न भक्षण करना, म्लेच्छादिक नीच पुरुषोंसें स्पर्श करना, विना स्नान

किये भोजन करना इत्यादिक जो अपवित्र व्यवहार हैं तिनसेंभी जो रहित है काहेतें "आचारप्रभवो धर्मः" इस महाभारतके वाक्यमें प्रथम आचार होनेतेंहि सर्व धर्मोंकी उत्पत्ति कथन करी है ॥ तथा जो (जितेन्द्रियः) कहिये जिह्वा उपस्थादिक इन्द्रियोंकेभी जीतनेहारा है अर्थात् इन्द्रियोंके वशीभूत होयकरके शास्त्रनिषिद्ध परस्त्रीगमादिकोंमें प्रवृत्त नहि होवे है किंतु पूर्णमासी अमावस्या एकादशी आदिक शुभ दिनोंमें अपनी स्त्रीकाभी संगम नहि करे है और दिनमें तो भूलकरकेभी कदाचित् स्त्रीसंगम नहि करना चाहिये काहेतें दिवामैथुनका धर्मशास्त्र और वेदमें बहुतहि दोष लिखा है ॥ तथा (वृद्धजनानुगः) कहिये जिस कार्यका आरंभ करे है तो प्रथम अपने पितापितामहादिक वृद्ध जनोंसें पूछ लेवेहै और जो अपने नहि होवे तो दूसरे अपने सजातियोंसें पूछ लेवे है अथवा (वृद्धजनानुगः) कहिये जिस प्रकारसें अपने पितापितामहादिकोंका व्यवहार होवे तिसहिके अनुसार आपभी आचरण करे है यह वार्ताभी मनुस्मृतिमें कथन करी है "येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ॥ तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यति" अर्थ—

जिस मार्गमें इस पुरुषके पिता और पितामहादिक वृद्ध लोक चलते रहे होवें तिसहि मार्गमें इसकोभी चलना चाहिये काहेतें तिसमें चलनेसें इस पुरुषकी कदाचित्भी हानि नहि होवे है इति ॥ सो इस श्लोकमें मनुने "सतां मार्गे" यह पद रखा है तिस-करके जो अपने पिता पितामहादिक अधर्ममें चलने-हारे होवें तो तिस मार्गका परित्याग कर देवे तिस-हिमें हठ नहि करे काहेतें एक वार्तामेंहि हठकर लेनेसें पुरुषकी उन्नति कदाचित् नहि होवे है यह वार्ता हितोपदेशमेंभी कही है "तातस्य कूपोयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबंति" अर्थ—यह हमारे बापका खुदवाया हुया कूप है यातें हम तो इसहिका जलपान करेंगे दूसरेका नहि इस प्रकारसे हठ करके मूर्ख पुरुष सर्वदा क्षारे जलकाहि पान करते हैं इति ॥ अथवा (वृद्धजनानुगः) कहिये विद्या-वृद्ध और ज्ञानवृद्ध जो महात्मा पुरुष हैं तिनके कथ-नानुसार चले है ॥ तथा (क्षमी) कहिये जो सजा-तीय और अन्य पुरुषोंकी ताडना और दुष्ट वचनोंकोभी सहन करे है काहेतें क्रोध करनेतें पुरुषके जपतपादिक सुकृतोंका नाश हो जावे है ॥ यह वार्ता महाभारतमेंभी

कथन करी है "यत्क्रोधनो यजति यद्ददाति यद्वा तपस्तप्यति यज्जुहोति ॥ वैवस्वतस्तद्धरतेस्य सर्वं मोघः श्रमो भवति हि क्रोधनस्य" अर्थ—क्रोधी पुरुष जो कुछ यज्ञादि यजन करे है अथवा दान करे है वा तप करे है वा होम करे है सो सर्वहि यमराजा हरण कर लेवे है और तिस क्रोधी पुरुषका सर्व परिश्रम वृथाहि होवे है इति ॥ तथा (विचारशीलश्च) कहिये जो नित्यं प्रति अष्ट प्रहरोंमेंसें दो अथवा तीन घटिका सर्व व्यवहारोंका परित्याग करके एकांतस्थलमें जायकरके अपने हित और अहित कार्योंका विचार करेहै तिनमें जो जो अपने अहितके करनेहारे अशुभ कर्म होवें तिनकूं तो दिनदिनप्रति न्यून करता जावे और जो जो हितके करनेहारे शुभ कर्म होवें तिनकी अधिकता करता जावे ॥ यह वार्ता मनुस्मृतिमेंभी कथन करी है "एकाकी चिंतयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः ॥ एकाकी चिंतयानो हि परं श्रेयोधिगच्छति" अर्थ—विवेकी पुरुषको नित्यंप्रति एकाकी होयकरके एकांतस्थलमें जायकरके अपने आत्माके हितका चिंतन करना चाहिये काहेतें एकाकी चिंतन करनेसें यह पुरुष परम कल्याणकूं प्राप्त होवे है इति ॥ यहां विचार-

शब्द वेदांतादिक सत्‌शास्त्रोंके विचारकाभी उपलक्षण जान लेना ॥ यह संक्षेपसें गृहस्थके धर्मोंका वर्णन किया है सो हे शिष्य, गृहस्थ जो पुरुष इत्यादिक धर्मोंका यथावत् आचरण करे है सो (गृहेपि मुच्यते) कहिये गृहस्थाश्रमविषे स्थित भयाभी ज्ञानकी प्राप्ति द्वारा शीघ्र निर्विघ्न मोक्षपदकूं प्राप्त होवे है ॥ यह वार्ता अन्य स्मृतिमेंभी कथन करी है "न्यायागतधन-स्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ॥ श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोपि विमुच्यते" अर्थ—जो पुरुष न्यायपूर्वक धर्मसें धनका उपार्जन करता है और जीवब्रह्मकी एक-ताका जो तत्त्वज्ञान है तिसमें निष्ठावान् है तथा अपने कुलोचित श्राद्धादिक जो नित्यनैमित्तिक कर्म हैं तिनकाभी यथाशक्ति आचरण करे है और सत्यवादी कहिये सर्वदा सत्य भाषण करे है ऐसा गृहस्थ पुरुषभी मोक्षपदकूं प्राप्त होवे है इति ॥ १०६ ॥

इस प्रकारसें यहांपर्यंत सर्व पूर्वोक्त ग्रंथसंदर्भकरके धर्मका लक्षण ईश्वर और जीवके तटस्थलक्षण और स्वरूपलक्षण तथा तिन दोनोंकी एकता अंतःकरणकी शुद्धिका उपाय और परम सुखकी प्राप्तिविषे निर्विक-ल्पसमाधिकी हेतुता योगके अंग और स्वरूप तथा

पुरुषार्थ और प्रारब्धका बलाबलभाव और संन्यासी तथा गृहस्थके धर्म इत्यादि यह सर्व रहस्य श्रवण करके उत्तमाधिकारी होनेतें इतनेमेंहि सर्व संशयोंसें रहित भया शिष्य अब अपनी कृतकृत्यताकूं सूचन करता हुया गुरुसें अनुज्ञा मांगे है

॥ शिष्य उवाच ॥

शमं गतो मेऽखिलसंशयज्वरो
भवन्मुखांभोजवचोमृतद्रवैः ॥
वनेऽथवा किं सदने विहारिणा
मया कथं स्थेयमिहाधुना गुरो ॥ १०७ ॥

टीका—शमं गत इति ॥ हे गुरो, (भवन्मुखांभोज) कहिये आपके मुखरूप कमलसें जो वचनरूप अमृत द्रवता भया है तिसकरके (संशयज्वरो) कहिये मेरा जो अज्ञानजन्य जीवईश्वरादिविषयक नानाप्रकारके संशयरूप हृदयका ज्वर अर्थात् ताप था सो अब (अखिल) कहिये सर्वहि निःशेषकरके शांतिकूं प्राप्त हो गया है अर्थात् अब मैं सर्व संशयविपर्ययसें रहित ज्ञानकूं प्राप्त होयकरके कृतकृत्य होता भया हुं सो हे भगवन्, अब इस वर्तमान शरीरके शेष रहे प्रारब्ध-कर्मके क्षयपर्यंत मेरेको (वनेऽथवा किं सदने)

कहिये हिमालयादिक पर्वतोंमें जायकरके वनमें निवास करना योग्य किंवा स्त्रीपुत्रादिकोंकरके युक्त अपने तिसहि गृहविषे जायकरके निवास करना उचित है सो इन दोनों पक्षोंमेंसें मेरेको किसका ग्रहण करना योग्य है तथा (कथं स्थेयं) कहिये तहां वन अथवा गृहविषे निवास करके मेरेको किस प्रकारके आचरणसें स्थित होना उचित है अर्थात् सर्वदा ध्यानमेंहि स्थित होना उचित है किंवा लौकिक व्यवहारोंमेंभी प्रवृत्त होना योग्य है सो कृपा करके मेरे प्रति आज्ञापन करो इति ॥ १०७ ॥ इस प्रकारसे शिष्यकी कृतकृत्यता और प्रार्थना श्रवणकरके तथा अपने उपदेशके परिश्रमकी सफलता देखकरके अत्यंत प्रसन्नताकूं प्राप्त भये गुरु अब तीन श्लोकोंकरके उपदेश करते हुये तिसकूं अनुज्ञा देवे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

शरीरतः कर्म समाचरन् बहि-
र्गतांतरासक्तिरमित्रमित्रयोः ॥
समः सतां सेतुमलंघयँस्तत-
स्तपोवने वा सदने रमस्व भोः ॥ १०८ ॥

टीका—शरीरत इति ॥ हे शिष्य, जितनेक संध्या-

तर्पणादि वैदिक और क्रयविक्रय आदि लौकिक गृहस्थके कर्म हैं अथवा स्नान शौच भिक्षाटनादिक जो त्यागीके कर्म हैं तिन सर्वकूं लौकिकदृष्टिसें बाह्यशरीर-करके सम्यक् प्रकारसें आचरण करता हुया और (गतांतरासक्तिः) कहिये तिन कर्मोंके करणेमें जो अहं कर्तापनेका अभिमानरूप आसक्ति है तिसकरके अंतरसें रहित भया तथा (अमित्रमित्रयोः समः) कहिये अपने शत्रु और मित्रविषे समभावसें देखता हुया यहां शत्रुमित्रशब्दकरके साधु, मध्यस्थ, पापी, ब्राह्मण, चांडाल, श्वानादिकोंकाभी ग्रहण जान लेना तथा (सतां सेतुं) कहिये पूर्वके ऋषि, मुनि आदिक सत्पुरुषोंने जो गृहस्थ अथवा त्यागीके अर्थ खान-पानादिक व्यवहारोंकी मर्यादा बांध रखी है तिसकूं ज्ञानके मदकरके नहि उल्लंघन करता हुया (ततः) कहिये इन उक्त लक्षणोंकरके युक्त होयकरके पश्चात् (तपोवने वा सदने रमस्व) कहिये हे शिष्य, चाहे हिमालयादिक पर्वतोंमें जायकरके तपोवनविषे अथवा (सदने) कहिये चाहे स्त्रीपुत्रादिकोंकरके युक्त अपने गृहविषेहि जायकरके तूं रमण कर तिन दोनोंमें तेरी किसी प्रकारकीभी हानि नहि है ॥ यह वार्ता योग-

वासिष्ठके उपशमप्रकरणमेंभी कथन करी है "वसतूत्तम-भोगाढ्ये स्वगृहे वा जनाकुले ॥ सर्वभोगोज्झिताभोगे सुमहत्यथवा वने ॥ नासौ कलंकमाप्नोति हेम पंकगतं यथा" अर्थ—हे रामचन्द्र, जिस पुरुषको आत्मस्वरूपका दृढ बोध भया है और चित्तमें भोगोंकी आसक्ति नहि है सो पुरुष चाहे नाना प्रकारके स्त्री आदिक उत्तम भोगोंकरके संयुक्त और नाना प्रकारके बंधु, मित्र, दास, दासी आदिक जनोंकरके सर्वतरफसें व्याप्त भये अपने गृहविषे निवास करो अथवा सर्व भोगोंसें रहित जो महागह्वर वन है तिसमें जायकरके निवास करो परंतु सो तत्त्वदर्शी पुरुष तिन दोनोंकरके लिंपायमान नहि होवे है जैसे कीचमें पडा हुया सुवर्ण कलंककूं प्राप्त नहि होवे है इति ॥ १०८ ॥ इस प्रकारसें बाह्य शरीरका व्यवहार कथन करके अब आंतरिक मनका व्यवहार कथन करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

मनोभ्रमं विश्वमिदं चराचरं
विलोकयन्नात्मरतिर्गतैषणः
विनिर्ममो मानमदादिवर्जित-
स्तपोवने वा सदने रमस्व भोः ॥ १०९ ॥

टीका—मनोभ्रममिति ॥ हे शिष्य, ब्रह्मासैं लेकरके स्थाणुपर्यंत जो यह चराचर जगत् प्रतीत होय रहा है तिस सर्वकूं तूं (मनोभ्रमं) कहिये जैसे स्वप्ना-वस्थाविषे मनके भ्रमकरके मिथ्याहि पदार्थ सत्यकी न्यांई प्रतीत होवे हैं तैसेहि (विलोकयन्) कहिये विचारदृष्टिसैं देखता हुया ॥ यह वार्ता योगवार्तिक-मैंभी कथन करी है "दीर्घस्वप्नमिमं विद्धि दीर्घं वा चित्तविभ्रमम् ॥ चराचरं लय इव प्रसुप्तमिह पश्यताम्" अर्थ—हे मुमुक्षु पुरुष, इस चराचर सर्व प्रपंचको तूं दीर्घकालके स्वप्नसमान अथवा दीर्घ चित्तका विभ्रम जान अथवा प्रलयकाल और सुषुप्तिकी न्यांई सर्व तरफसैं प्रसुप्त शून्यकी न्यांई देख इति ॥ तथा (आत्मरतिः) कहिये हे शिष्य, उक्त प्रकारसैं सर्व प्रपंचकूं मिथ्या जानकरके सर्व बाह्य विषयोंसैं चित्तका आकर्षण करके अपने प्रत्यगात्मस्वरूपमैंहि प्रीति करता हुया ॥ यह वार्ता मुंडकोपनिषत्मैंभी कथन करी है "आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः" अर्थ—जो पुरुष अपने आत्मामैंहि क्रीडावाला और आत्मामैंहि प्रीतिवाला तथा आत्मामैंहि क्रियावाला होवे है

सोई सर्व ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंमें श्रेष्ठ होवे है इति ॥ तथा (गतैषणः) कहिये वित्तैषणा, पुत्रैषणा, लोकैषणा इस प्रकारसें तीन प्रकारकी जो एषणा अर्थात् वासना हैं तिसकाभी परित्याग करता हुया तथा (विनिर्ममो) कहिये किसी बाह्य पदार्थ अथवा अपने शरीरविषेभी ममतासें रहित भया तथा (मानमदादिवर्जितः) कहिये जाति विद्यादिकोंका जो अभिमान और मद है तिसकरकेभी रहित भया आदिशब्दसें काम क्रोध लोभ मोहादिकोंकाभी ग्रहण जान लेना सो हे शिष्य, इन सर्व लक्षणोंकरके युक्त होयकरके पश्चात् तपोवनसें अथवा अपने गृहविषेहि दोनोंमेंसें जहां तेरी इच्छा होवे तहांही तुं जायकरके रमण कर इति ॥ १०९ ॥ इस प्रकारसें मनके व्यापारको निरूपण करके अब सर्व ग्रंथका मुख्य रहस्य कथन करते हुये गुरु उपदेशकी समाप्ति करे हैं ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

अहं हरिः सर्वमिदं च तन्मयं
ततोऽन्यदासीन्न भविष्यति क्वचित् ॥
इमं दृढं निश्चयमंतरास्थित-
स्तपोवने वा सदने रमस्व भोः ॥ ११० ॥

टीका—अहं हरिरिति ॥ हे शिष्य, (अहं हरिः) कहिये मैं साक्षात् सच्चिदानंद नारायणस्वरूप हूं काहेतें जबपर्यंत यह अधिकारी पुरुष प्रथम अपनेकूं नारायणरूप नहि निश्चय करे है तबपर्यंत तिसकूं नारायणकी प्राप्ति नहि होवे है ॥ यह वार्ता योगवासिष्ठके उपशमप्रकरणमेंभी प्रतिपादन करी है "नाविष्णुः कीर्तयेद्विष्णुं नाविष्णुर्विष्णुमर्चयेत् । नाविष्णुः संस्मरेद्विष्णुं नाविष्णुर्विष्णुमाप्नुयात्" अर्थ—जबपर्यंत उपासक पुरुष प्रथम स्वयं विष्णुरूप नहि होय लेवे तबपर्यंत विष्णुका पूजनभी नहि करे तथा जबपर्यंत प्रथम स्वयं विष्णुरूप नहि होय लेवे तबपर्यंत विष्णुका स्मरणभी नहि करे तथा जबपर्यंत स्वयं विष्णुरूप नहि होय लेवे है तबपर्यंत विष्णुकूं प्राप्तभी नहि होवे है इति ॥ किंच "वासुदेवः सर्वमिति" इस प्रकारसें सर्व जगत्कूं जो नारायणरूपसें देखना है सोई सर्वसें उत्तम परा भक्ति कहिये है तो इस प्रकारसें जब सर्व जगत्हि नारायणरूप हुया तो पीछे सो उपासक तिसतें भिन्न कहां रहा और जो फिरभी भिन्न रहा तो तिसने सर्व जगत्कूं नारायणरूप नहि जाना और जो सर्व जगत् नारायणरूप नहि जाना तो उत्तम भक्ति

नहि भई यातें विष्णुके उपासक पुरुषोंको अपनेकूंभी विष्णुरूपहि जानना चाहिये ॥ तथा "सर्वमिदं च तन्मयं" कहिये हे शिष्य, यह जो चराचर जगत् देखने और श्रवणमें आवे है सोभी सर्व नारायणरूपहि है ॥ यह वार्ता श्रुतिमेंभी कथन करी है "यावत्किंचित् जगत् सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः" अर्थ—यावत् मात्र यह जगत् देखने और श्रवणमें आवे है सो तिस सर्वकूं अंतर और बाह्यसें व्यापकरके नारायण स्थित होय रहे हैं इति ॥ तथा विष्णुपुराणमें पराशरमुनिनें मैत्रेयके प्रतिभी कहा है "ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च ॥ नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य" अर्थ—हे विप्रवर्य मैत्रेय, यावत्मात्र सूर्य चन्द्रमा ध्रुव शुक्रादिक आकाशमंडलमें ज्योतियां हैं सो सर्वहि विष्णुरूप हैं और यावत्मात्र भूर्भुवःस्वरादिक चतुर्दश भुवन हैं सोभी सर्वहि विष्णुरूप हैं तथा यावत्मात्र सुमेरु हिमालयादिक पर्वत हैं सोभी सर्वहि विष्णुरूप हैं और यावत्मात्र पूर्व पश्चिमादि दिशा हैं सोभी सर्व विष्णुरूप हैं तथा यावत्मात्र गंगायमुनादिक नदियां हैं सोभी सर्व विष्णुरूप हैं

तथा यावत्मात्र क्षारोदक्षीरोदादिक समुद्र हैं सोभी सर्व विष्णुरूप हैं अर्थात् कहांपर्यंत वर्णन करें (यदस्ति) कहिये इस जगत्मात्रमें जो वस्तु प्रत्यक्ष हैं और जो अप्रत्यक्ष हैं सो सर्वहि विष्णुरूप हैं इति ॥ तथा हे शिष्य, (ततोन्यदासीन्न) कहिये तिस नारायणके विना दूसरी कोई वस्तु इस कालसें प्रथमभी नहि होती भई है और न इस कालमें है न आगे होवेहिगी अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्तमान कालमें एक नारायणहि नानाप्रकारके पदार्थोंके आकारसें प्रतीत होवे है॥ तथा यह वार्ता नारायणोपनिषत्मेंभी कथन करी है "नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं" अर्थ—यह सर्व जगत् नारायणहि है और जो भूत तथा भाव्य कहिये भविष्यत् वस्तु है सोभी सर्व नारायणहि है इति ॥ यहां नारायण और निर्गुण ब्रह्मके विषे कोई भेदकी शंका नहि करणी चाहिये काहेतें ब्रह्महि स्थूलमतिवाले भक्तोंके अनुग्रहके अर्थ नारायणकी व्यक्तिसें प्रतीत होवे है ॥ यह वार्ता अथर्ववेदकी रामपूर्वतापनी उपनिषत्मेंभी कथन करी है "चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः । उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना" अर्थ—सच्चिदानंदमय अद्वितीय निष्कल

और शरीरसें रहित जो परब्रह्म है तिसकी उपासक लोकोंके अर्थहि चतुर्भुज विष्णु आदिक व्यक्तिकी कल्पना अर्थात् निर्माण होवे है इति ॥ तथा सामवेदकी तलवकारउपनिषत्मेंभी "ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये" इत्यादिकरके लिखा है कि असुरों और देवतोंके युद्धमें ब्रह्मने देवतोंकूं जय दिया तो पश्चात् सो देवता ब्रह्मकूं नहि जानकरके अपनेसेंहि असुरोंकूं जय किया मान करके अभिमानकूं प्राप्त होते भये तो पश्चात् तिस वार्ताकूं जानकर तिनके मदके दूर करणद्वारा तिनके ऊपर अनुग्रहके लिये सो ब्रह्म तिन देवतोंके सन्मुख तेजोमय यक्षस्वरूसें प्रकट होता भया इति ॥ तथा कृष्णावतारमें भगवान्ने अपने मुखसेंहि कहा है "ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च" अर्थ—हे अर्जुन, मोक्षरूप और निर्विकार ब्रह्मकी जो प्रतिष्ठा कहिये स्थिति है सोभी मैंहि हुं अर्थात् जिसकूं वेदांती लोक ब्रह्म कहते हैं सोभी मैंहि हुं इति ॥ यातें नारायणमें और ब्रह्ममें किंचित्मात्रभी भेद नहि है ॥ सो हे शिष्य, मैं और यह सर्व जगत नारायणरूप है और तिसतें भिन्न कोई वस्तु नहि है इस उक्त प्रकारका जो निश्चय है तिस निश्चयविषे तूं सर्वदा अपने

हृदयमें दृढ स्थित भया पश्चात् चाहे तपोवनमें अथवा (सदने) कहिये अपने गृहविषेहि जायकरके रमण कर तो तूं सर्वथाहि मुक्तस्वरूप है काहेतें इस उक्त प्रकारके निश्चयवान् पुरुषको पुनः जन्ममरणरूप संसारकी प्राप्ति नहि होवे है ॥ यह वार्ता विष्णुपुराणमेंभी कथन करी है "अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो नान्यत्ततः कारणकार्यजातम् । ईदृङ्मनो यस्य न तस्य भूयो भवोद्भवा द्वंद्वगदा भवंति ॥" अर्थ—मैं हरि हुं और यह चराचर सर्व जगत्भी जनार्दनरूप है तिसके विना दूसरा कोई कारणकार्यरूप पदार्थसमूह नहि है इस प्रकारसें जिस पुरुषके मनमें दृढ निश्चय होवे है (तस्य) कहिये तिसको पुनः जन्ममरणके अभाव होनेतें पश्चात् शीतोष्ण क्षुधापिपासादिक द्वंद्वजन्य बाधा कदाचित् नहि होवे है इति ॥ अर्थात् जैसे नदीका जल समुद्रमें जायकरके अपने नाम और रूपका परित्याग करके समुद्रके साथ एकीभावकूं प्राप्त हो जावे है तैसेहिं सो तत्त्वदर्शी पुरुष अपने नामरूपका परित्याग करके वर्तमान शरीरके पात होनेतें सच्चिदानंदमय नारायणके साथ एकीभावकूं प्राप्त होवे है ॥ तथा यह वार्ता मुंडकउपनिषत्मेंभी कथन करी है

"यथा नद्यः स्यंदमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छंति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपादिमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्" अर्थ—जैसे गंगादिक वहती हुई नदियां अपने नाम और रूपका परित्याग करके समुद्रमें जायकरके लीन हो जाती हैं तैसेहि तत्ववेत्ता पुरुष नामरूप उपाधिसें रहित भया शरीरके अंतकालमें प्रकृतिसें परे जो दिव्य पुरुष ब्रह्म है तिसविषे लीन हो जावे है इति ॥ इस प्रकारकी गति जिन पुरुषोंकी होवे है तिनहिका इस संसारमें जन्म लेना सफल होवे है और सोई पुरुष धन्यवादके योग्य होवे है ॥ यह वार्ता अन्यत्रभी कथन करी है "कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुंधरा पुण्यवती च तेन । अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः" ॥ अर्थ—जिस पुरुषका अपार ज्ञान और आनंदके समुद्ररूप ब्रह्मविषे चित्त लीन होवे है तिस पुरुषका सर्वहि कुल पवित्र हो जावे है और तिसकी जननी जो माता है सोभी कृतार्थ हो जावे है तथा सो पुरुष जहां जहां गमन करे है तहां तहां तिसके चरणोंके स्पर्शसें वसुंधरा जो पृथिवी है सोभी पावन होजावे है किंच जो पुरुष तिसके दर्शन स्पर्शन सेवादि करनेवाले होवे हैं

सोभी कृतार्थ हो जावे हैं इति ॥ ११० ॥ इस प्रकारसें ग्रंथकार शिष्य और गुरुके प्रश्नोत्तरद्वारा सर्व वेदांत-शास्त्रका संक्षेपसें रहस्य प्रतिपादन करके अब तिनके प्रसंगकी समाप्ति करते हुये ग्रंथका उपसंहार करे हैं ॥

ततः समभ्यर्च्य गुरुं मुहुर्मुहुः
प्रणम्य चैवामुदिताशयोऽगमत् ॥
सुखेप्सुरेकांतनिकेतनं ततो
जगाम संत्यक्ततनुः परं पदम् ॥ १११ ॥

टीका—तत इति ॥ (ततः) कहिये उक्त तीन श्लोकोंकरके दृढ निश्चय कथनपूर्वक गुरुके अनुज्ञा देनेके अनंतर सो मुमुक्षु पुरुष (मुहुर्मुहुः) कहिये अति आदरसें वारंवार गुरुकी पुष्पचंदनादिकोंसे विधि-पूर्वक पूजन और स्तुति करके तथा पुनः पुनः दंड वत् प्रणाम और प्रदक्षिणा करके (आमुदिताशयः) कहिये ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति होनेतें मनविषे अतीव हर्षकूं प्राप्त भया ॥ यद्यपि गुरुनें तपोवन और गृह विषे निवास करनेकी समानहि अनुज्ञा करी थी परंतु सो (सुखेप्सुः) कहिये निर्विकल्प समाधिद्वारा जीवन्मुक्तिके सुखकी इच्छा करता हुया (एकांतनिके-तनं) कहिये किसी पर्वतकी गुहादिक निर्जन स्थानकूं

चला जाता भया ॥ ततः कहिये तहां कुछकाल प्रारब्ध-कर्मपर्यंत जीवन्मुक्तिके सुखकूं अनुभव करके पश्चात् शरीरके प्रारब्धकर्मोंके क्षीण होनेतें (संत्यक्ततनुः) कहिये स्थूल सूक्ष्म और तिन दोनोंका कारणभूत जो अविद्यारूप शरीर है तिन तीनों शरीरोंका परित्याग करके (परं पदं जगाम) कहिये सर्व ज्ञानियोंका निवासभूत जो सच्चिदानंदस्वरूप परब्रह्मपद है तिसकूं प्राप्त होता भया ॥ सो यह ज्ञानी पुरुषको कहीं देशांतरमें जायकरके ब्रह्मकी प्राप्ती नहि होवे है किंतु जिस स्थानविषे तिसके शरीरका पात होवे है तहांहि तिसकी पुर्यष्टकाके भेदन होनेतें सर्वव्यापक ब्रह्मके साथ एकीभाव होय जावे है जैसे घटके फूटनेसें घटाकाशकी तहांहि महाकाशके साथ एकता होय जावे है ॥ तथा यह वार्ता यजुर्वेदकी बृहदारण्यकउपनिषत्मेंभी कथन करी है "न तस्य प्राणा उत्क्रामंति" अर्थ—तिस ज्ञानी पुरुषके मरणकालमें शरीरसें बाहिर प्राणोंका गमन नहि होवे है किंतु तहांहि तिनका विलय होवे है इति ॥ तथा मुंडकउपनिषत्मेंभी कहा है "गताः कलाः पंचदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु ॥ कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवंति"

अर्थ—जिस कालमें ज्ञानी पुरुषका शरीरपात होवे है तो तिसकी प्राणादिक जो पंचदश कला होवे है सो प्रतिष्ठा कहिये तिस कालमें स्वस्वकारणविषे लीन होवे जावे हैं और चक्षु आदिक गोलकोंविषे स्थित जो देवता अर्थात् इन्द्रिय होवे हैं सोभी स्वस्वअधिष्ठानभूत सूर्यादिक देवतोंविषे एकीभावकूं प्राप्त होयजावे हैं तथा तिसका जीवात्मा और शुभाशुभ कर्म निर्विकार जो परब्रह्म है तिसके साथ एकीभावकूं प्राप्त होय जावे हैं इति ॥ १११ ॥ इस प्रकारसें ग्रंथकी परिसमाप्ति करके अब इस ग्रंथके अध्ययनका फल वर्णन करे हैं ॥

इमं मुमुक्षुः सुमुमुक्षुमोक्षदं
विचारयेद्यस्तु विचारदीपकम् ॥
समाहितः सोऽस्तसमस्तसंशयः
पुनर्भवं याति न याति तत्पदम् ॥११२॥

टीका—इममिति ॥ जो (मुमुक्षुः) कहिये जन्ममरणरूप संसारबंधनसें मुक्त होनेकी इच्छावान जिज्ञासु पुरुष (सुमुमुक्षुमोक्षदं) कहिये विवेक वैराग्यादिकसाधनसंपन्न श्रेष्ठ अधिकारी जनोंको विचारद्वारा मोक्षपदके देनेहारा जो यह विचारदीपक नाम

पुस्तक है तिसकूं आदिसें लेकर अंतपर्यंत सम्यक् प्रकारसें गुरुमुखद्वारा अथवा स्वयमेव (समाहितः) कहिये एकाग्र चित्त होयकरके वारंवार विचारता है सोभी पूर्वोक्त मुमुक्षु शिष्यकी न्यांई सर्व संशयोंकरके रहित भया (पुनर्भवं याति न) कहिये पुनः जन्म-मरणरूप संसारकूं नहि प्राप्त होवे है किंतु (याति तत्पदम्) कहिये जिस विदेहकैवल्यरूप परमपदकूं सो शिष्य प्राप्त होता भया है तिसहि पदकूं सोभी शीघ्रहि प्राप्त होवे है इति ॥ ११२ ॥ इस प्रकारसें ग्रंथाध्ययनका फल निरूपण करके अब ग्रंथकार इस ग्रंथकूं अपने इष्ट देवके प्रति अर्पण करे हैं ॥

विचारदीपकः सोऽयं
मनोविष्ण्वालयेऽर्पितः ॥
ब्रह्मानंदाभिधानेन
यतिना हरितुष्टये ॥ ११३ ॥

टीका—विचारदीपकः सोऽयं इति ॥ (विचार-दीपकः) कहिये आत्मविचारके प्रकाश करणेहारा जो यह विचारदीपक नाम पुस्तक है सो मानो एक दीपक है सो जैसे कोई श्रद्धालु पुरुष दीपक निर्माण करके मंदिरमें जायकर अपने इष्टदेवके प्रति अर्पण

करे है तैसेहि इस विचाररूप दीपककूं निर्माण करके ब्रह्मानंद नामक परमहंसने (मनोविष्ण्वालये) कहिये जिज्ञासुपुरुषोंका शुद्ध मनरूप जो विष्णु भगवान्का मंदिर है तिसमें भगवत्की प्रसन्नताके अर्थ अर्पण किया है काहेतें जैसे देवमंदिरमें दीपकके अर्पण करनेसें तिसके प्रकाशकरके सर्व पुरुषोंको देवताका अपरोक्ष दर्शन होवे है तैसेहि इस विचाररूप दीपकके मनरूप मंदिरमें अर्पण करनेसें सर्व मुमुक्षु पुरुषोंको सच्चिदानंद-स्वरूप विष्णुभगवान्का आत्मस्वरूपसें अपरोक्ष दर्शन होवे है यातें सर्व मुमुक्षु पुरुषोंको अवश्यमेव आद्योपांत विचार करके अपने मनरूप मंदिरसें इस विचाररूप दीपकको प्रज्वलित करना योग्य है इति ॥ ११३ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यपुष्करनिवासि-
श्रीस्वामिब्रह्मानन्दविरचितो भावार्थभासिनी-
नाम भाषाटीकासमेतो विचारदीपकः
संपूर्णः ॥

॥ हरिः ॐ ॥

अथ श्रीहरिस्तोत्रप्रारंभः ।

भुजंगप्रयातं छन्दः ।

जगज्जालपालं कचत्कंठमालं
शरच्चन्द्रभालं महादैत्यकालम् ॥
नभो नीलकायं दुरावारमायं
सुपद्मासहायं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ १ ॥
सदांभोधिवासं गलत्पुष्पहासं
जगत्सन्निवासं शतादित्यभासम् ॥
गदाचक्रशस्त्रं लसत्पीतवस्त्रं
हसच्चारुवक्रं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ २ ॥
रमाकंठहारं श्रुतिव्रातसारं
जलांतर्विहारं धराभारहारम् ॥
चिदानन्दरूपं मनोहारिरूपं
धृतानेकरूपं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ३ ॥
जराजन्महीनं परानन्दपीनं
समाधानलीनं सदैवानवीनम् ॥
जगज्जन्महेतुं सुरानीककेतुं
दृढं विश्वसेतुं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ४ ॥
कृताम्नायगानं खगाधीशयानं
विमुक्तेर्निदानं हतारातिमानम् ॥

स्वभक्तानुकूलं जगद्वृक्षमूलं
निरस्तार्तशूलं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ५ ॥
समस्तामरेशं द्विरेफाभकेशं
जगद्बिंबलेशं हृदाकाशदेशम् ॥
सदा दिव्यदेहं विमुक्ताखिलेहं
सुवैकुंठगेहं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ६ ॥
सुरालीबलिष्ठं त्रिलोकीवरिष्ठं
गुरूणां गरिष्ठं स्वरूपैकनिष्ठम् ॥
सदा युद्धधीरं महावीरवीरं
भवांभोधितीरं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ७ ॥
रमावामभागं तलाविष्टनागं
कृताधीनयागं गतारागरागम् ॥
मुनीन्द्रैः सुगीतं सुरैः संपरीतं
गुणौघैरतीतं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ८ ॥
इदं यस्तु नित्यं समाधाय चित्तं
पठेदष्टकं कष्टहारं मुरारेः ॥
स विष्णोर्विशोकं ध्रुवं याति लोकं
जराजन्मशोकं पुनर्विन्दते नो ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं
श्रीहरिस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अथ श्रीहरिनामाष्टकम् ।

वसंततिलका छन्दः ।

श्रीकेशवाच्युत मुकुन्द रथांगपाणे
गोविंद माधव जनार्दन दानवारे ॥
नारायणामरपते त्रिजगन्निवास
जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥ १ ॥

श्रीदेवदेव मधुसूदन शार्ङ्गपाणे
दामोदरार्णवनिकेतन कैटभारे ॥
विश्वंभराभरणभूषितभूमिपाल
जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥ २ ॥

श्रीपद्मलोचन गदाधर पद्मनाभ
पद्मेश पद्मपद पावन पद्मपाणे ॥
पीतांबरांबररुचे रुचिरावतार
जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥ ३ ॥

श्रीकांत कौस्तुभधरार्तिहराप्रमेय
विष्णो त्रिविक्रम महीधर धर्मसेतो ॥
वैकुंठवास वसुधाधिप वासुदेव
जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥ ४ ॥

श्रीनारसिंह नरकांतक कांतमूर्ते
लक्ष्मीपते गरुडवाहन शेषशायिन् ॥

केशिप्रणाशन सुकेश किरीटमौले
जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥ ५ ॥
श्रीवत्सलांछन सुरर्षभ शंखपाणे
कल्पांतवारिधिविहार हरे मुरारे ॥
यज्ञेश यज्ञमय यज्ञभुगादिदेव
जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥ ६ ॥
श्रीराम रावणरिपो रघुवंशकेतो
सीतापते दशरथात्मज राजसिंह ॥
सुग्रीवमित्र मृगवेधक चापपाणे
जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥ ७ ॥
श्रीकृष्ण वृष्णिवर यादव राधिकेश
गोवर्धनोद्धरण कंसविनाश शौरे ॥
गोपाल वेणुधरपांडुतनूजबंधो
जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥ ८ ॥
इत्यष्टकं भगवतः सततं नरो यो
नामांकितं पठति नित्यमनन्यचेताः ॥
विष्णोः परं पदमुपैति पुनर्न जातु
मातुः पयोधररसं पिबतीह सत्यम् ॥ ९ ॥

इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं
श्रीहरिनामाष्टकं संपूर्णम् ॥

अथ श्रीहरिशरणाष्टकम् ।

वसंततिलका छन्दः ।

ध्येयं वदंति शिवमेव हि केचिदन्ये
शक्तिं गणेशमपरे तु दिवाकरं वै ॥
रूपैस्तु तैरपि विभासि यतस्त्वमेव
तस्मात्त्वमेव शरणं मम चक्रपाणे ॥ १ ॥

नो सोदरो न जनको जननी न जाया
नैवात्मजो न च कुलं विपुलं बलं वा ॥
संदृश्यते न किल कोऽपि सहायको मे
तस्मात्त्वमेव शरणं मम चक्रपाणे ॥ २ ॥

नोपासिता मदमपास्य मया महांत-
स्तीर्थानि चास्तिकधिया नहि सेवितानि ॥
देवार्चनं च विधिवन्न कृतं कदापि
तस्मात्त्वमेव शरणं मम चक्रपाणे ॥ ३ ॥

दुर्वासना मम सदा परिकर्षयंति
चित्तं शरीरमपि रोगगणा दहंति ॥
संजीवनं च परहस्तगतं सदैव
तस्मात्त्वमेव शरणं मम चक्रपाणे ॥ ४ ॥

पूर्वं कृतानि दुरितानि मया तु यानि
स्मृत्वाऽखिलानि हृदयं परिकंपते मे ॥

ख्याता च ते पतितपावनता तु यस्मात्
तस्मात्त्वमेव शरणं मम चक्रपाणे ॥ ५ ॥
दुःखं जराजननजं विविधाश्च रोगाः
काकश्वसूकरजनिर्निरये च पातः ॥
त्वद्विस्मृतेः फलमिदं विततं हि लोके
तस्मात्त्वमेव शरणं मम चक्रपाणे ॥ ६ ॥
नीचोऽपि पापवलितोऽपि विनिंदितोऽपि
ब्रूयात्तवाहमिति यस्तु किलैकवारम् ॥
तस्मै ददासि निजलोकमिति व्रतं ते
तस्मात्त्वमेव शरणं मम चक्रपाणे ॥ ७ ॥
वेदेषु धर्मवचनेषु तथाऽऽगमेषु
रामायणेऽपि च पुराणकदंबके वा ॥
सर्वत्र सर्वविधिना गदितस्त्वमेव
तस्मात्त्वमेव शरणं मम चक्रपाणे ॥ ८ ॥

इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानंदविरचितं
श्रीहरिशरणाष्टकं संपूर्णम् ॥

अथ श्रीदीनबंध्वष्टकम् ।

वसंततिलका छन्दः ।

यस्मादिदं जगदुदेति चतुर्मुखाद्यं
यस्मिन्नवस्थितमशेषमशेषमूले ॥

यत्रोपयाति विलयं च समस्तमंते
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबंधुः ॥ १ ॥
चक्रं सहस्रकरचारु करारविन्दे
गुर्वी गदा दरवरश्च विभाति यस्य ॥
पक्षीन्द्रपृष्ठपरिरोपितपादपद्मो
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबंधुः ॥ २ ॥
येनोद्धृता वसुमती सलिले निमग्ना
नग्ना च पांडववधूः स्थगिता दुकूलैः ॥
संमोचितो जलचरस्य मुखाद्गजेन्द्रो
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबंधुः ॥ ३ ॥
यस्यार्द्रदृष्टिवशतस्तु सुराः समृद्धिं
कोपेक्षणेन दनुजा विलयं व्रजंति ॥
भीताश्चरंति च यतोर्कयमानिलाद्या
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबंधुः ॥ ४ ॥
गायंति सामकुशला यमजं मखेषु
ध्यायंति धीरमतयो यतयो विविक्ते ॥
पश्यंति योगिपुरुषाः पुरुषं शरीरे
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबंधुः ॥ ५ ॥
आकाररूपगुणयोगविवर्जितोपि
भक्तानुकंपननिमित्तगृहीतमूर्तिः ॥

यः सर्वगोऽपि कृतशेषशरीरशय्यो
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबंधुः ॥ ६ ॥
यस्यांघ्रिपंकजमनिद्रमुनीन्द्रवृन्दै-
राराध्यते भवदवानलदाहशांत्यै ॥
सर्वापराधमविचिंत्य ममाखिलात्मा
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबंधुः ॥ ७ ॥
यन्नामकीर्तनपरः श्वपचोऽपि नूनं
हित्वाखिलं कलिमलं भुवनं पुनाति ॥
दग्ध्वा ममाघमखिलं करुणेक्षणेन
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबंधुः ॥ ८ ॥
दीनबंध्वष्टकं पुण्यं ब्रह्मानन्देन भाषितम् ॥
यः पठेत्प्रयतो नित्यं तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥९॥
इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं
श्रीदीनबंध्वष्टकं संपूर्णम् ॥

अथ श्रीगोविन्दाष्टकम् ।

शिखरिणी छन्दः ।

चिदानंदाकारं श्रुतिसरससारं समरसं
निराधाराधारं भवजलधिपारं परगुणम् ॥
रमाग्रीवाहारं व्रजवनविहारं हरनुतं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकंदं भजत रे ॥ १ ॥

महांभोधिस्थानं स्थिरचरनिदानं सुनयनं
सुधाधारापानं विहगपतियानं यमरतम् ॥
मनोज्ञं सुज्ञानं मुनिजननिधानं ध्रुवपदं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकंदं भजत रे ॥ २ ॥
धिया धीरैर्ध्येयं श्रवणपुटपेयं यतिवरै-
र्महावाक्यैर्ज्ञेयं त्रिभुवनविधेयं विधिपरम् ॥
मनोमानामेयं सपदि हृदि नेयं नवतनुं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकंदं भजत रे ॥ ३ ॥
महामायाजालं विमलवनमालं मलहरं
सुभालं गोपालं निहतशिशुपालं शशिमुखम् ॥
कलातीतं कालं गतिजितमरालं मुररिपुं
सदा तं गोविन्दं परमसुखदं भजत रे ॥ ४ ॥
नभोबिंबस्फीतं निगमगणगीतं समगतिं
सुरौघे संप्रीतं दितिजविपरीतं पुरिशयम् ॥
गिरां पंथातीतं स्वदितनवनीतं नयकरं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकंदं भजत रे ॥ ५ ॥
परेशं पद्मेशं शिवकमलजेशं शिवकरं
द्विजेशं देवेशं तनुकुटिलकेशं कलिहरम् ॥
खगेशं नागेशं निखिलभुवनेशं नगधरं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकंदं भजत रे ॥ ६ ॥
रमाकांतं कांतं भवभवभयांतं भवसखं
दुराशांतं शांतं निखिलहृदि भांतं भुवनपम् ॥

विवादांतं दांतं दनुजनिचयांतं सुचरितं
सदा तं गोविन्दं परमसुखकंदं भजत रे ॥ ७ ॥
जगज्ज्येष्ठं श्रेष्ठं सुरपतिकनिष्ठं क्रतुपतिं
बलिष्ठं भूयिष्ठं त्रिभुवनवरिष्ठं वरवहम् ॥
स्वनिष्ठं धर्मिष्ठं गुरुगुणगरिष्ठं गुरुवरं
सदा त गोविन्दं परमसुखकंदं भजत रे ॥ ८ ॥
गदापाणेरेतद्दुरितदलनं दुःखशमनं
विशुद्धात्मा स्तोत्रं पठति मनुजो यस्तु सततम् ॥
स भुक्त्वा भोगौघं चिरमिह ततोऽपास्तवृजिनो
वरं विष्णोः स्थानं व्रजति खलु वैकुंठभुवनम् ॥९॥
इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं
श्रीगोविन्दाष्टकं संपूर्णम् ॥

अथ श्रीरामाष्टकम् ।

प्रमाणिका छन्दः ।

कृतार्तदेववंदनं दिनेशवंशनंदनम् ॥
सुशोभिभालचंदनं नमामि राममीश्वरम् ॥ १ ॥
मुनीन्द्रयज्ञकारकं शिलाविपत्तिहारकम् ॥
महाधनुर्विदारकं नमामि राममीश्वरम् ॥ २ ॥
स्वतातवाक्यकारिणं तपोवने विहारिणम् ॥
करे सुचापधारिणं नमामि राममीश्वरम् ॥ ३ ॥

कुरंगमुक्तसायकं जटायुमोक्षदायकम् ॥
प्रविद्धकीशनायकं नमामि राममीश्वरम् ॥ ४ ॥
प्लवंगसंघसंमतिं निबद्धनिम्नगापतिम् ॥
दशास्यवंशसंक्षतिं नमामि राममीश्वरम् ॥ ५ ॥
विदीनदेवहर्षणं कपीप्सितार्थवर्षणम् ॥
स्वबंधुशोककर्षणं नमामि राममीश्वरम् ॥ ६ ॥
गतारिराज्यरक्षणं प्रजाजनार्तिभक्षणम् ॥
कृतास्तमोहलक्ष्मणं नमामि राममीश्वरम् ॥ ७ ॥
हृताखिलाचलाभरं स्वधामनीतनागरम् ॥
जगत्तमोदिवाकरं नमामि राममीश्वरम् ॥ ८ ॥
इदं समाहितात्मना नरो रघूत्तमाष्टकम् ॥
पठन्निरंतरं भयं भवोद्भवं न विन्दते ॥ ९ ॥

इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानंदविरचितं
श्रीरामाष्टकं संपूर्णम् ॥

अथ श्रीकृष्णाष्टकम् ।

प्रमाणिका छन्दः ।

चतुर्मुखादिसंस्तुतं समस्तसात्त्वतानुतम् ॥
हलयुधादिसंयुतं नमामि राधिकाधिपम् ॥ १ ॥
बकादिदैत्यकालकं सगोपगोविपालकम् ॥
मनोहरासितालकं नमामि रधिकाधिपम् ॥ २ ॥

सुरेन्द्रगर्वगंजनं विरिंचिमोहभंजनम् ॥
व्रजांगनानुरंजनं नमामि राधिकाधिपम् ॥ ३ ॥
मयूरपिच्छमंडनं गजेन्द्रदंतखंडनम् ॥
नृशंसकंसदंडनं नमामि राधिकाधिपम् ॥ ४ ॥
प्रदत्तविप्रदारकं सुदामधामकारकम् ॥
सुरद्रुमापहारकं नमामि राधिकाधिपम् ॥ ५ ॥
धनंजयाजयावहं महाचमूक्षयावहम् ॥
पितामहव्यथापहं नमामि राधिकाधिपम् ॥ ६ ॥
मुनीन्द्रशापकारणं यदुप्रजापहारणम् ॥
धराभरावतारणं नमामि राधिकाधिपम् ॥ ७ ॥
सुवृक्षमूलशायिनं मृगारिमोक्षदायिनम् ॥
स्वकीयधामयायिनं नमामि राधिकाधिपम् ॥ ८ ॥
इदं समाहितो हितं वराष्टकं सदा मुदा ॥
जपञ्जनो जनुर्जराभवार्तितः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानंदविरचितं
श्रीकृष्णाष्टकं संपूर्णम् ॥

अथाभिलाषाष्टकम् ।

शिखरिणी छन्दः ।

कदा पक्षीन्द्रांसोपरि गतमजं कंजनयनं
रमासंश्लिष्टांगं गगनरुचमापीतवसनम् ॥

गदाशंखाभोजारिवरकरमालोक्य सुचिरं
गमिष्यत्यैतन्मे ननु सफलतां नेत्रयुगलम् ॥ १ ॥
कदा क्षीराब्ध्यंतः सुरतरुवनांतर्मणिमये
समासीनं पीठे जलधितनयालिंगिततनुम् ॥
स्तुतं देवैर्नित्यं मुनिवरकदंबैरभिनुतं
स्तवैः संस्तोष्यामि श्रुतिवचनगर्भैः सुरगुरुम् ॥२॥
कदामासाभीतं भवजलधितस्तापसतनुं
गता रागं गंगातटगिरिगुहावाससदनम् ॥
लपंतं हे विष्णो सुरवर रमेशेति सततं
समभ्येत्योदारं कमलनयनो वक्ष्यति वचः ॥ ३ ॥
कदा मे हृत्पद्मे भ्रमर इव पद्मे प्रतिवसन्
सदा ध्यानाभ्यासादनिशमुपहूतो विभुरसौ ॥
स्फुरज्ज्योतीरूपो रविरिव रमासेव्यचरणो
हरिष्यत्यज्ञानाज्जनिततिमिरं तूर्णमखिलम् ॥ ४ ॥
कदा मे भोगाशा निविडभवपाशादुपरतं
तपः शुद्धं बुद्धं गुरुवचनतोदैरचपलम् ॥
मनो मौनं कृत्वा हरिचरणयोश्चारु सुचिरं
स्थितिं स्थाणुप्रायां भवभयहरां यास्यति पराम् ॥५॥
कदा मे संरुद्धाखिलकरणजालस्य परितो
जिताशेषप्राणानिलपरिकरस्य प्रजपतः ॥

सदोंकारं चित्तं हरिपदसरोजे धृतवतः
समेष्यत्युल्लासं मुहुरखिलरोमावलिरियम् ॥ ६ ॥
कदा प्रारब्धांते परिशिथिलतां गच्छति शनैः
शरीरे चाक्षौघेऽप्युपरतवति प्राणपवने ॥
व्रजत्यूर्ध्वं शश्वन्मम वदनकंजे मुहुरहो
करिष्यत्यावासं हरिरिति पदं पावनतमम् ॥ ७ ॥
कदा हित्वा जीर्णां त्वचमिव भुजंगस्तनुमिमां
चतुर्बाहुश्चक्रांबुजदरकरः पीतवसनः ॥
घनश्यामो दूतैर्गगनगतिनीतो नतिपरै-
र्गमिष्यामीशस्यांतिकमखिलदुःखांतकमिति ॥ ८ ॥
इति श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानंदविरचित-
मभिलाषाष्टकं संपूर्णम् ॥

अथ श्रीवेदव्यासाष्टकम् ।

द्रुतविलंबितं छन्दः ।

कलिमलास्तविवेकदिवाकरं
समवलोक्य तपोवलितं जनम् ॥
करुणया भुवि दर्शितविग्रहं
मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥ १ ॥
भरतवंशसमुद्धरणेच्छया
स्वजननीवचसा परिणोदितः ॥

अजनयत्तनयत्रितयं प्रभु-
र्मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥ २ ॥
मतिबलादि निरीक्ष्य कलौ नृणां
लघुतरं कृपया निगमांबुधेः ॥
समकरोदिह भागमनेकधा
मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥ ३ ॥
सकलधर्मनिरूपणसागरं
विविधचित्रकथासमलंकृतम् ॥
व्यरचयच्च पुराणकदंबकं
मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥ ४ ॥
श्रुतिविरोधसमन्वयदर्पणं
निखिलवादिमतांध्यविदारणम् ॥
ग्रथितवानपि सूत्रसमूहकं
मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥ ५ ॥
यदनुभाववशेन दिवं गतः
समधिगम्य महास्त्रसमुच्चयम् ॥
कुरुचमूमजयद्विजयो[1] द्रुतं
मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥ ६ ॥
समरवृत्तविबोधसमीहया
कुरुवरेण[2] मुदा कृतयाचनः ॥

---

१ विजयोऽर्जुनः.   २ कुरुवरेण धृतराष्ट्रेण.

सपदि सूतं[1]मदादमलेक्षणं
मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥ ७ ॥
वननिवासपरौ कुरुदंपती
सुतशुचा तपसा च विकर्षितौ ॥
मृततनूजगणं समदर्शयत्
मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥ ८ ॥
व्यासाष्टकमिदं पुण्यं ब्रह्मानन्देन कीर्तितम् ॥
यः पठेन्मनुजो नित्यं स भवेच्छास्त्रपारगः ॥ ९ ॥
इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानंदविरचितं श्रीवेद-
व्यासाष्टकं संपूर्णम् ।

अथ भगवत्प्रातःस्मरणम् ।

वसंततिलका छन्दः ।

प्रातः स्मरामि फणिराजतनौ शयानं
नागामरासुरनरादिजगन्निदानम् ॥
वेदैः सहागमगणैरुपगीयमानं
कांतारकेतनवतां परमं निधानम् ॥ १ ॥
प्रातर्भजामि भवसागरवारिपारं
देवर्षिसिद्धनिवहैर्विहितोपहारम् ॥
संदृप्तदानवकदंबमदापहारं
सौंदर्यराशिजलराशिसुताविहारम् ॥ २ ॥

---

१ सूतं संजयं.

प्रातर्नमामि शरदंबरकांतिकांतं
पादारविन्दमकरन्दजुषां भवांतम् ॥
नानाऽवतारहृतभूमिभरं कृतांतं
पाथोजकंबुरथपादकरं प्रशांतम् ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं ब्रह्मानन्देन कीर्तितम् ॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥
इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानंदविरचितं
श्रीभगवत्प्रातःस्मरणं संपूर्णम् ।

अथ श्रीविष्णुनीराजनम् ।

जय माधव मधुसूदन जय करुणासिंधो ।
जय भवभीतिविनाशन शरणागतबंधो ॥
जय देव जय देव ॥ १ ॥
वंदे कमलेशानं विनतासुतयानम् ।
जगदेकांतनिदानं वांछितवरदानम् ॥
जय देव जय देव ॥ २ ॥
मुकुटविभूषितभालं शोभितवनमालम् ।
श्यामलकुंचितबालं त्रिभुवनजनपालम् ॥
जय देव जय देव ॥ ३ ॥
कटितटपीतदुकूलं विश्वविटपमूलम् ।
भवसागरजलकूलं भजतामनुकूलम् ॥
जय देव जय देव ॥ ४ ॥

सागरजापरिवारं कौस्तुभमणिहारम् ।
क्षीरांभोधिविहारं निगमागमसारम् ॥
जय देव जय देव ॥ ५ ॥

शेषशरीरनिवासं विमलांबरभासम् ।
श्रीवैकुंठविलासं दानवकुलनाशम् ॥
जय देव जय देव ॥ ६ ॥

शंखगदांबुजधारं चतुर्भुजाकारम् ।
वृन्दारकहितकारं भववारिधिपारम् ॥
जय देव जय देव ॥ ७ ॥

कमलाश्रितवामांगं भूषितसकलांगम् ।
सुंदरकरुणापांगं मणिमंजुवरांगम् ॥
जय देव जय देव ॥ ८ ॥

पार्षदपूगसमेतं सुरगणसमवेतम् ।
ब्रह्मानंदनिकेतं मुनिजनसमुपेतम् ॥
जय देव जय देव ॥ ९ ॥

हरिनीराजनमेतत्पठति नरो नित्यम् ।
विष्णोर्लोकमशोकं व्रजति स वै सत्यम् ॥
जय देव जय देव ॥ १० ॥

इति श्रीब्रह्मानंदस्वामिविरचितं
विष्णुनीराजनं समाप्तम् ॥